इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 20
भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य

खंड

1

भारतीय दलित कविता

इकाई 1
मराठी दलित कविता : 'वृक्ष' और 'माँ' 7

इकाई 2
तेलुगु दलित कविता : 'गौरेया' और 'खून का सवाल' 26

इकाई 3
पंजाबी दलित कविता : 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' 41

इकाई 4
गुजराती दलित कविता : 'माँ! मैं भला की मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा' 55

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय
सी–3, कावेरी, इग्नू आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी,
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव,
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

प्रो. शिवकुमार मिश्र (सेवानिवृत्त)
एफ–17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग
बल्लभ विद्यानगर, गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
प्रो. विमल थोरात, मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	1	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
डॉ. वी. कृष्णा हिंदी विभाग हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद	2	**(इकाई 2 का संशोधन – डॉ. रमेश यादव)**
डॉ. रमेश यादव राम मनोहर लोहिया डिग्री कॉलेज बिधुना, औरया उ.प्र.	3	
डॉ. शिवदत्ता वावळकर मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	4	

पाठ्यक्रम निर्माण एवं संपादन सहयोग	आवरण चित्रकार	सचिवालयी सहयोग
डॉ. शिवदत्ता वावळकर आर.टी.ए., मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	**सवी सावरकर** नई दिल्ली	**मिथिलेश प्रसाद/कौशल्या सैनी** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

जुलाई, 2014

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014*

ISBN-978-81-266-6780-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रक : गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी–90, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110020

पाठ्यक्रम परिचय

'दलित साहित्य : विशेष अध्ययन' पाठयक्रम जो कि 16 क्रेडिट मोडयुल है। यह पाठ्यक्रम एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के ऐच्छिक पाठयक्रमों की श्रृंखला में आपके लिए उपलब्ष किया जा रहा है। प्रस्तुत मोडयुल का यह चौथा पाठयक्रम एम.एच.डी.–20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' अध्ययन के लिए छात्रों को उपलब्ध है। अभी तक आपने दलित साहित्य : विशेष अध्ययन के तीन पाठयक्रमों का अध्ययन कर लिया होगा। जिन्हें क्रमवार हम आपके अवलोकनार्थ दे रहे हैं।

- **भारत की चिंतन परम्पराएं और दलित साहित्य (एम.एच.डी.–17)**
- **दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप (एम.एच.डी.–18)**
- **हिंदी दलित साहित्य का विकास (एम.एच.डी.–19)**

एम.एच.डी.–20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' अभी आपके समक्ष है। आप इस पाठयक्रम में पाँच खंडों का अध्ययन करेंगे। समग्र पाठयक्रम की रूपरेखा यहाँ पर दे रहे हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रथम खंड 'भारतीय दलित कविता' है। इस खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः मराठी, तेलुगु, पंजाबी और गुजराती की दलित कविताएं शामिल है। इन कविताओं के माध्यम से आप दलित कविता की संवेदना और स्वरूप, प्रयोजन, वैचारिकी और सौंदर्यबोष के नये प्रतिमानों से परिचित होंगे। इस खंड में चार इकाईयाँ है :

इकाई 1 मराठी दलित कविता : 'वृक्ष' और 'माँ'
इकाई 2 तेलुगु दलित कविता : 'गौरेया' और 'खून का सवाल'
इकाई 3 पंजाबी दलित कविता : 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य'
इकाई 4 गुजराती दलित कविता : 'माँ, मैं भला कि मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा'

इस पाठयक्रम का द्वितीय खंड 'भारतीय दलित कहानी–I' है। इस खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः मराठी और गुजराती के प्रतिनिधिक कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करना है। इसमें दलित कहानीकारों की वैचारिकी और प्रतिबद्धता को भी जान सकेंगे। इस खंड में कुल पांच इकाईयाँ है–

इकाई 5 जब मैंने जाति छुपाई
इकाई 6 बुद्ध ही मरा पड़ा है
इकाई 7 कवच
इकाई 8 रोटले को नजर लग गई
इकाई 9 गिद्धानुभुती

इस पाठयक्रम का तीसरा खंड 'भारतीय दलित कहानी–II' है। इस खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः उड़िया, तेलुगु, कन्नड और पंजाबी के प्रतिनिधिक कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करना है। इस खंड में कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 10 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और 'उम्मीद अब भी बाकी है'
इकाई 11 'गाँव का कुआँ' और 'परती जमीन'
इकाई 12 'अमावस' और 'मोची की गंगा'
इकाई 13 'हड्डा रोडी और रेहडी' और 'बिच्छू'

इस पाठयक्रम का चौथा खंड 'भारतीय दलित आत्मकथन' है। इसमें भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः मराठी भाषा के चर्चित लेखक शरणकुमार लिंबाळे का आत्मकथन 'अक्करमाशी' और प्रसिद्ध लेखिका बेबीताई कांबळे का आत्मकथन 'जीवन हमारा' का अध्ययन करना है। साहित्य के क्षेत्र में आत्मकथन दलित साहित्य की प्रमुख विषा ही नहीं बल्कि समसामयिक परिस्थितियाँ और दलित जीवन की वास्तविकता को समझने का महत्वपूर्ण दस्तावेज भी है। इस खंड में दो आत्मकथनों पर कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 14 अक्करमाशी–I

इकाई 15 अक्करमाशी– II

इकाई 16 जीवन हमारा– I

इकाई 17 जीवन हमारा– II

इस पाठयक्रम का पांचवां खंड 'भारतीय दलित उपन्यास' है। इसमें भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः पंजाबी भाषा के लेखक गुरुचरण सिंह राओ के उपन्यास 'मशालची' और तेलुगु के जी. कल्याणराव के उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' का अध्ययन करना है। दलित उपन्यासकारों ने समय, समाज एवं परिवेश के आलोक में दलित जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक पहलुओं को बड़ी शिद्दत से उजागर किया है। इस खंड में दो उपन्यासों पर कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 18 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु

इकाई 19 'मशालची' में चित्रित दलित जीवन

इकाई 20 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु

इकाई 21 'अस्पृश्य वसंत' में चरित्र चित्रण

भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य भारतीय वर्ण व्यवस्था की त्रासदी और वेदना के गहरे साक्षात्कार से प्रकट हुआ है जिसमें विद्रोह का स्वर मुखर और तीव्र है। हजारों वर्षों की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर, धर्म, ईश्वर, शास्त्रों और आत्मा के गढ़े गए ढकोसले को पूर्णतः उलटाकर समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय का यह विद्रोही स्वर अब देश के हर क्षेत्र, प्रदेश राज्यों में सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में जिसने हलचल मचा दी हैं, सदियों से मुक्त समाज जो ज्ञान की परंपरा से वंचित, अंधविश्वासों, धार्मिक पाखंड में लिप्त होकर पूर्वजन्म के कर्म का फल समझकर गुलामी को अपना भाग्य मानकर अवचेतन की अवस्था में सिसकता, तड़पता, छटपटाता रहा था। वह नहीं जान सका कि एक अदद गुलाम के रूप में चालाक ब्राह्मणवाद ने ईश्वरीय वर्ण–जाति व्यवस्था का जघन्य षडयंत्र रचकर उसे कभी यह अहसास न होने देने का जाल रचा गया। लेकिन सदियों तक चारों ओर से घेराबंदी किए गए इंसानों को जगाने के लिए डॉ. भीमराव आंबेडकर के रूप में उन्हें विद्वान मनीशी ने आवाहन किया। सदियों की नींद से दलित वंचित शोषित समुदाय को जगाकर उनमें अन्यों की तरह होने का अहसास जगाया। दलित मुक्ति चेतना के आंदोलन (1927–1940) ने दलितों में आत्मज्ञान आया। सदियों की यथास्थितिवादी परंपराओं, प्रथा, कुरीतियों से वे नाता तोड़कर एक मुक्त स्वाशीन मानव बनने की चाहत से मुक्ति आंदोलन में कूद पड़े थे। विशेष रूप से दलित स्त्री का मुक्ति आंदोलन में सहभागी होना किसी आश्चर्य से कम नहीं था। आत्मबोध से जगा यह कारवां डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी को आत्मसात कर चुका, तो दलित साहित्य का जन्म हुआ। सदियों के संताप, वेदना, क्रोष, आक्रोश और विद्रोह को अभिव्यक्त करने के लिए रचनात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माष्यम दलित लेखकों ने अपनाया। दलित साहित्य आज भारत की लगभग तेरह–चौदह भाषाओं में सृजनात्मकता के विशिष्ट क्षेत्र में अपनी विषयवस्तु, आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति और अतीत के संत्रासपूर्ण जीवन की सच्चाई को रेखांकित कर रहा है। भारतीय दलित साहित्य के आंदोलन में तब्दील होकर दलित जीवन के विभिन्न आयामों को रचनाओं के माध्यम से जीवन की भीषण वास्तविकताओं को शब्दरूप देकर सर्वविदित करता जा रहा है। स्वानुभवों के इस त्रासदीय सच्चाई को यथास्थितिवादी अभिजात्य साहित्यकारों ने इससे पहले लेखन की विषयवस्तु ही नहीं समझी थी। इस अदृश्य दुनिया की तरफ सभी का रवैया अनदेखी करने का रहा या कह सकते हैं कि वे यही सोचते और विश्वास करते थे कि यही तो इनके जीवन का प्रारब्ष है, इसे तो उन्हें झेलना ही होगा। साहित्य जगत के तमाम बुद्धीवादी चिंतक लेखक इस अनोखी वंचित दुनिया की ओर रूबरू ही नहीं होना चाहते थे। अंधकार में डुबे हुए लोगों को रोशनी की ओर ले जाने के लिए डॉ. भीमराव आंबेडकर के आने तक राह देखनी पड़ी। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी के गर्भ से प्रसूत दलित साहित्य के समतावादी परिवर्तनवादी विचारों का आप इस पाठयक्रम के पांच खंडों में विस्तार से अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के अध्ययन के बाद आप भारतीय दलित साहित्य की अवधारणा, सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार, दलित साहित्य की वैचारिकी, रचनाकारों की प्रतिबद्धता आदि पहलुओं से परिचित होंगे। आशा है कि विद्यार्थी अपने अध्ययन के दौरान भारतीय दलित साहित्य को व्यापक दृष्टिकोण से समझ सकेंगे और सफलता प्राप्त करेंगे।

खंड परिचय

एम.एच.डी. 20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' इस पाठयक्रम का यह प्रथम खंड 'भारतीय दलित कविता' है। इस खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः मराठी, तेलुगु, पंजाबी और गुजराती इन भाषाओं के प्रतिनिधिक कवियों की कविताओं का अध्ययन करना है। इन भाषाओं की कविताओं के द्वारा दलित कविता का स्वरूप और संवेदना, काव्य सृजन के प्रयोजन, कवियों की वैचारिकी और प्रतिबद्धता को समझ सकेंगे। दलित कविता के द्वारा साहित्य के क्षेत्र में उभरे प्रतिरोध एवं परिवर्तन के स्वर और सौन्दर्यबोध के नये प्रतिमानों से परिचित किया जा रहा है। इस खंड में चार इकाईयाँ है–

इकाई 1 मराठी दलित कविता : 'वृक्ष' और 'माँ'

इकाई 2 तेलुगु दलित कविता : 'गौरेया' और 'खून का सवाल'

इकाई 3 पंजाबी दलित कविता : 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य'

इकाई 4 गुजराती दलित कविता : 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा'

खंड की इकाई 1 मराठी दलित कविताः 'वृक्ष' और 'माँ' है। इस इकाई में मराठी दलित साहित्य की वैचारिकी और कविता सृजन की वैचारिक पृष्ठभूमि को विस्तार से बताया गया है। मराठी के प्रसिद्ध कवि दया पवार की 'वृक्ष' और कवयित्री ज्योति लांजेवार की 'माँ' इन कविताओं के विभिन्न पहलुओं को समझना है। 'वृक्ष' कविता में कलात्मकता भी है और परिवर्तन का विचार भी। यह कविता जतिदंश की वेदना और वर्णव्यवस्था के मिथ्याडम्बरों को प्रश्नांकित करती है। 'माँ' कविता में दलित स्त्री के संघर्ष, श्रमसाधना और डॉ. आंबेडकर के दलित आंदोलन के प्रति दलित स्त्री की आस्था और सक्रियता को दर्शाया गया है। इस इकाई की दोनों कविताओं के द्वारा मराठी दलित कविता के सामाजिक सरोकार और मुक्तिकामी चेतना को समझना है।

खंड की इकाई 2 तेलुगु दलित कविता :'गौरेया' और 'खून का सवाल' है। इस इकाई में तेलुगु दलित कविता का स्वरूप, संवेदना और विशेषताओं की चर्चा की गई है। तेलुगु की कवयित्री चल्लापल्ली स्वरूपरानी की 'गौरेया' कविता में दलित स्त्री अस्मिता का संघर्ष जीवन यथार्थ और अपेक्षाओं को अभिव्यक्त किया गया है। कवि एन्ड्लूरी सुधाकर की कविता 'खून का सवाल' दलित जीवन की त्रासदी और भविष्य के स्वप्नों को उजागर करती है। इस इकाई में दोनों कविताओं की संवेदना और विशेषताओं को समझने के साथ–साथ तेलुगु में उभरी दलित चेतना को समझना है।

खंड की इकाई 3 पंजाबी दलित कविता :'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' है। इसमें पंजाब प्रदेश में दलित चेतना का विकास और काव्य सृजन के रचनात्मक पहलुओं को समझना है। मदन वीरा की 'घोड़ा' कविता में दलित जीवन के संघर्ष और परिवर्तनकामी चेतना को रूपक एवं प्रतीक के द्वारा बताया गया है। दलित कविता के क्षेत्र में द्वारका भारती की 'आज का एकलव्य' उत्कृष्ट कविता मानी जाती है। इसमें मिथक और आधुनिकता के समन्वय द्वारा प्रतिरोध के स्वरों को मुखर किया गया है। इन दोनों कविताओं के अध्ययन से आप पंजाबी दलित कविता की संवेदना, कलात्मकता और भाषा–शिल्प के नये प्रयोग से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 4 गुजराती दलित कविता : 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा' है। मराठी के बाद गुजराती में तेजी से उभरे दलित साहित्य की प्रमुख विधा कविता रही है। गुजराती दलित कवियों ने अपने सृजन, वैचारिकी और प्रतिबद्धता से दलित साहित्य को नई दिशा दी है। इस इकाई में गुजराती दलित कविता का स्वरूप, संवेदना और कविता में अभिव्यक्त विचारों को समझना है। इसमें कवि नीरव पटेल की 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' कविता अभिव्यक्त दलित समाज के अंतर्विरोध तथा अवसरवाद को मुखर करती है। साथ–ही दलित जीवन के अतीत और वर्तमान से परिचित कराती है। परिवर्तनकामी दलित चेतना के संदर्भ में इस कविता की आलोचनात्मक शैली उत्कृष्ट है। जयंत परमार की 'पड़' कविता में दलित समाज में मौजूद रुढियाँ और परंपराओं को नकारने का आह्वान किया गया है। दलपत चौहान की 'व्यथा' कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक और धार्मिक बंधनों से मुक्ति की अभिलाषा जताई गई है। इन तीनों कविता में नकार, विद्रोह और सामाजिक परिवर्तन के तत्व मौजूद है। इन कविताओं के अध्ययन से आप गुजराती दलित साहित्य के योगदान और महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे।

इस सम्पूर्ण खंड के महत्वपूर्ण प्रश्न अंत में दिये गए हैं। साथ ही उपयोगी पुस्तकों की सूची दी है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए, इससे आप को अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 मराठी दलित कविता : 'वृक्ष' और 'माँ'

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मराठी दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

1.3 मराठी दलित कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता

1.4 रचनाकार : व्यक्तित्व एवं रचनाबोध

1.5 'वृक्ष' कविता का पाठावलोकन

1.5.1 जाति दंश की मर्मांतक वेदना

1.5.2 वर्णव्यवस्था को प्रश्नांकित करती कविता

1.6 'माँ' कविता का पाठावलोकन

1.6.1 दलित स्त्री का जीवन संघर्ष और वर्णव्यवस्था

1.6.2 दलित स्त्री की श्रमसाधना

1.6.3 भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टि

1.7 दलित सौंदर्यबोध और जीवन दृष्टि

1.8 सारांश

1.0 उद्देश्य

भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य के खंड 1 भारतीय दलित कविता की यह दूसरी इकाई मराठी दलित कवि 'दया पवार' और कवयित्री ज्योति लांजेवार की कविताओं पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- मराठी में दलित कविता में अभिव्यक्त वैचारिक प्रतिबद्धता के सशक्त स्वर को जान सकेंगे;
- मराठी के दलित रचनाकार दया पवार और ज्योति लांजेवार के व्यक्तित्व तथा रचनाबोध से परिचित हो सकेंगे;
- मराठी दलित साहित्य के उद्‌भव एवं विकास की यात्रा को रेखांकित कर सकेंगे;
- दलित कविताओं में अभिव्यक्त जाति दंश की मर्मांतक वेदना को महसूस कर सकेंगे;
- दलित कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक रूढ़ियों के नकार का मूल्यांकन एवं विश्लेषण कर सकेंगे;
- दलित स्त्री के संघर्षमय और श्रमसाध्य जीवन की त्रासदी को रेखांकित कर पायेंगे; और
- परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के मापदंडों को नकारकर दलित जीवन संदर्भ, परिवेश, चेतनाबोध से नए सौंदर्य मूल्यों की रचना द्वारा जीवनवादी बोध आशय और विचार चेतना की अभिव्यक्ति को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

दलित कविता के इस खंड 1 में आपको मराठी दलित कवि दया पवार की 'वृक्ष' और कवयित्री ज्योति लांजेवर की 'माँ' इन दो कविताओं का अध्ययन करना है। मराठी कविता की मूल प्रेरणा और वैचारिक आधार डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी हैं मुक्ति चेतना ही काव्य द्वारा प्रवाहित होकर शोषण-दमन से मुक्ति पाने की ईच्छाशक्ति जगाने तथा विचार दर्शन के प्रकाश में समता का मार्ग प्रशस्त करती है। डॉ. आंबेडकर की प्रखर वैचारिकी और मुक्ति का आंदोलन दलित लेखन का प्रेरणा स्रोत है। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी ने सदियों से मूक समाज में आत्मभान जगाया और यह जागृत चेतनाशील दलित लेखक प्रस्थापितों द्वारा किए अन्याय, शोषण और उत्पीड़न का विरोध स्वानुभूति की प्रखर अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य के वरिष्ठ रचनाकार दया पवार और ज्योति लांजेवार दलित मुक्ति के सृजनात्मक आंदोलन में शामिल रचनाकर्मी है जिनकी रचनाएँ जातिमुक्त, शोषणमुक्त और भयमुक्त समाज निर्मिति के लिए प्रतिबद्धता का परिचय देती है। दोनों ही रचनाकारों का मराठी दलित साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। गद्य और कविता में समान रूप से अतिशय संवेदनात्मक एवं प्रामाणिक अभिव्यक्तियों द्वारा दोनों ही रचनाकारों ने मराठी साहित्य को समृद्ध किया है। दया पवार के अछूत (बलुतं) से मराठी साहित्य में आत्मकथन विधा की सुनियोजित परंपरा का आरंभ माना गया। प्रस्तुत इकाई में चयनित कविता उनके कोंडवाडा (कांजी हाउस) कविता संग्रह से ली गई है। दया पवार के कई कविता संग्रह और निबंध संग्रह प्रकाशित हैं।

ज्योति लांजेवार मराठी दलित साहित्य की वरिष्ठ और प्रमुख कवयित्री है। अध्ययन के लिए चयनित कविता उनके 'दिशा' कविता संग्रह से ली गई है। दलित स्त्री रचनाकारों में अपनी सशक्त और ऊर्जावान रचनाओं के लिए परिचित लेखिका ने दलित स्त्री संघर्षशीलता और दलित मुक्ति आंदोलन में उसकी निस्वार्थ सहभागिता को अपनी कविताओं के द्वारा उजागर किया है। इस इकाई के अध्ययन से सामाजिक न्याय के मानवीय पक्ष को समझने का अवसर आप को मिल रहा है। इससे विकसित नए दृष्टिकोण से आप स्वयं दलित साहित्य का अध्ययन, अवलोकन और विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 मराठी दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

बीसवीं शताब्दी में साहित्यिक और सांस्कृतिक वास्तविकता के रूप में दलित कविता को देखा जाना चाहिए, क्योंकि समाज और संस्कृति में होनेवाली हलचल, परिवर्तन और संवेदनशील मुद्दों को साहित्य प्रतिबिम्बित करता है। दलित कविता का उद्‌भव स्वातंत्र्योत्तर समय में हुआ लेकिन इसकी मूल प्रेरणा शक्ति डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के वृत्तपत्रीय लेखन और विचार में निहित है। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी दलित साहित्य का प्रेरणास्रोत है। समाज परिवर्तन की माँग को लेकर चले विश्व के इस क्रांतिकारी आंदोलन ने सदियों से मूक रहे समाज में स्वतंत्रता, समता और न्याय की आकांक्षा को जन्म दिया। डॉ. आंबेडकर द्वारा निर्मित भारत देश के संविधान के घोषणापत्र में इन मानवीय मूल्यों को अंकित करके समतावादी, स्वतंत्रतावादी और न्यायवादी बराबरी के व्यवहार का आश्वासन दिया गया है। लेकिन स्वतंत्रता की एक चौथाई शती उलटने के पश्चात् भी दलितों को गुलामी से मुक्ति नहीं मिली और सभी संवैधानिक प्रावधान धरे-के-धरे रह गए। प्रस्थापित समुदाय जो कि इस देश की संपत्ति, संसाधन और सत्ता को अपने हित के लिए ही इस्तेमाल करना चाहता है और संसाधनों को किसी से बाँटने की इच्छा ही नहीं रखते उससे बराबरी का अधिकार लेना लंबे और कठिन संघर्ष का हिस्सा है। दलित साहित्य परिवर्तन की माँग लेकर समतामूलक समाज निर्माण के लिए प्रतिबद्ध साहित्य है। अतः

दलित जीवन में व्याप्त अभाव, अपमान, उत्पीड़न, शोषण के खिलाफ एक हिरावल दस्ते के रूप में दलित रचनाकार मुक्ति के साहित्यिक आंदोलन में शामिल है। इस परिवर्तनवादी वैचारिकी ने जगाए आत्मभान से ही अपने जीवन में व्याप्त वंचना, अभाव, अवमानना और समाज से बहिष्कृत किए जाने की वेदना को शब्दबद्ध किया जाना अनिवार्य हुआ। समाज और संस्कृति ने दिए जाति दंश, अलगाव की अवहेलना से विद्रोही मन विद्रोही स्वर और तेवर लेकर मराठी दलित कविता में आविष्कृत हुआ। व्यवस्था के विरोध और नई मूल्य व्यवस्था की निर्मिति के लिए विद्रोही चेतना ही अनिवार्य पर्याय बन जाती है। विश्व के अनेक राष्ट्रों में हुई क्रान्ति में वहाँ की विद्रोही रचनात्मक अभिव्यक्ति का बड़ा योगदान रहा है। उदाः रशिया की बोल्शेविक क्रान्ति, दक्षिण अफ्रीका का मुक्ति संघर्ष तथा बंगलादेश की क्रांति में वहाँ के कवि और लेखकों द्वारा रचित कविता-गीतों की क्रांतिकारी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

दलित साहित्य के केन्द्र में वह मानव है, जिसे प्रस्थापित समाज व्यवस्था ने हजारों वर्षों तक उत्पीड़ित किया। इसकी मुक्ति के लिए आंबेडकरवाद ने सामाजिक संरचना के आमूलचूल परिवर्तन की माँग के साथ देशव्यापी आंदोलन छेड़ा था। डॉ. आंबेडकर ने दलित, शोषितों को नई पहचान मिले, व्यक्ति के रूप में सम्मान और अधिकार मिले इसलिए लंबे समय (सन् 1920 से 1945) तक सुनियोजित रूप में दलित मुक्ति संघर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यक्रम चलाए। मानव अधिकारों को हासिल करने की प्रतिबद्धता के साथ यह संघर्ष मानव मुक्ति के लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक अधिकार हासिल होने तक निरंतर जारी रहा। म. गांधीजी के नेतृत्व में देश की आजादी का आंदोलन छेड़ा गया था, तभी न्यायमूर्ति रानाडे, आगरकर, गोखले द्वारा देश की आजादी के साथ-साथ आंतरिक सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार तथा आर्थिक परिवर्तन का आंदोलन जोर पकड़ चुका था। इन सभी समाज सुधारकों की मान्यता थी कि सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार बिना आजादी आधी अधुरी रहेगी। लेकिन राजनीतिक आजादी के सामने परिवर्तन की माँग कमजोर पड़ी। क्योंकि इसमें समानता का पक्ष मुख्य था। डॉ. आंबेडकर द्वारा यही प्रयास सामाजिक मुक्ति आंदोलन के द्वारा किया गया उनका मुख्य हेतु था देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ सदियों से अस्पृश्यता का अभिशाप झेल रहा दलित (अस्पृश्य) समुदाय सर्वप्रथम जाति-वर्ण की गुलामी से मुक्त हो सके। देश की आजादी उन्हें राजनीतिक आर्थिक स्वतंत्रता का हक़दार तो बनाएगी ही। इसलिए अस्पृश्यता निर्मूलन के प्रश्न पर और राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन चलाए जाने के आग्रह को लेकर महात्मा गांधी से लगातार उनकी चर्चा एवं वैचारिक संघर्ष चलता रहा। वे इस बात को जानते थे कि सामाजिक संरचना में स्वतंत्रता से पूर्व ही परिवर्तन होना जरुरी हैं अन्यथा परंपरागत शोषणकारी जातिवादी ढाँचा ही बरकरार रहेगा और शोषण-उत्पीड़न-गुलामी की परंपरा का अंत नहीं हो पाएगा। उपरी स्वतंत्रता से व्यक्ति विकास, देश विकास में जातिगत श्रेष्ठ-कनिष्ठता, अस्पृश्यता और आर्थिक उत्पादनों का असमान बंटवारा बाधा ही बना रहेगा। यह डॉ. आंबेडकर की दूरदृष्टि थी और उनका समाज, संस्कृति, धर्म और अर्थव्यवस्था का वैज्ञानिक आकलन था जो शतप्रतिशत सच निकला। महात्मा गांधी के अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम और डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में सन् 1920 से 1945 तक चलाए दलित मुक्ति आंदोलन के बावजूद भारतीय जन-मानस से जाति का प्रभाव, जाति विशेष से तिरस्कार दलितों को हीन कोटी समझने और उत्पीड़न की प्रवृत्ति में बदलाव नहीं आया। परिणाम हमारे सामने है कि देश की संपदा को समान रूप में अभी भी नहीं बांटा गया। श्रेष्ठता के दंभ ने और राजनीतिक वर्चस्व ने विशेष रूप से दलितों की हिस्सेदारी को दरकिनार कर दिया। तमाम जमीनों के मालिक आज सवर्ण ही है। हलवाहों, मजदूर के रूप में दलित इनके हजारों, लाखों एकड़ भूमि पर अपने खून-पसीने को सिंचकर अन्न उगाता है; जिस पर उसका नाममात्र भी अधिकार नहीं होता। बल्कि

उपज के तुरंत बाद खलिहानों से छुआछूत के बहाने उन्हें खदेड दिया जाता। खेत, खलिहान खनीज, पानी के स्रोतों पर मात्र कुछ ही लोगों का कब्जा क्यों है, इसे समझना जरुरी है। परिणाम हमारे सामने एकदम साफ है। सदियों तक यह समाज मूक बनकर हो रहे उत्पीड़न, अवहेलना, अवमानना को भाग्य मानकर चुपचाप सहता रहा। मनुष्य ने मनुष्य को गुलाम बनाने के लिए रचे गए षड्यंत्र को वे कर्मफल के रूप में स्वीकारते आ रहे थे। जब-जब उसकी चेतना में अपनी स्थिति के प्रति प्रश्न जन्म लेते तब-तब प्रस्थापित व्यवस्था द्वारा हिंसात्मक कार्यवाही से उन्हें चुप कराया गया। धीरे-धीरे ब्राह्मणवाद के रचाए गए इस जाल में फंसकर दलित (अछूत) समायोजित होकर भाग्यवादी बने रहें।

दलित समुदाय के समायोजन द्वारा उनके श्रम का दोहन भी सहज साध्य हो गया। जातिगत आधार पर निम्न श्रेणी के कारण पहले से ही निम्नताबोध से ग्रस्त यह समुदाय श्रम विभाजन के कारण अनेक जातियों में बँटता चला गया और उनके पेशे उनकी पहचान बन कर रह गयी। चमडे से वस्तु बनानेवाले चर्मकार (जाटव), स्वच्छकार समुदाय वाल्मीकि, बुनाई-कताई करने वाले बुनकर-जुलाहे, कपड़े धोनेवाले धोबी, बाल काटनेवाले नाई, खेत जोतने वाले किसान-हलवाहे, मांस बेचनेवाले खटिक और इस तरह श्रम से जुड़े व्यवसायों से व्यक्ति की पहचान और श्रमिकों का विभाजन बढ़ता गया। इन्हें हीन-तुच्छ तथा हेय घोषित कर उनके श्रम पर आराम-तलब जिंदगी जीनेवाले परजीवि श्रेष्ठता का दंभ पालने लगे।

यह द्विज संस्कृति का निर्णय था। सभी श्रमिक वर्ण-जातियाँ अछूत, कमीन कही जाने लगी और परजीवि वरिष्ठता के नशे में हिंसात्मक होकर अत्याचार को अंजाम देते रहे। अब प्रश्न था इस स्वार्थ को अपरिवर्तनीय बनाने के लिए एक धार्मिक सामाजिक संरचना की घोषणा करना; वह हुई और सदियों तक स्वार्थाधि वर्ण अपना वर्चस्व जमा कर बैठ गए। कनिष्ठ, हेय माना गया समुदाय सदैव मालिकों के गुलाम बने रह नहीं सकते। स्वतंत्रता की चाहत उनमें भीतर-ही-भीतर जीवित होने लगती है। हरपाल अरुा का कथन विचारणीय हैः "हेय घोषित कर दिये गये समाज में 'स्व' का उद्‌भव एवं विकास स्वघोाति उत्कृष्टता के विरुद्ध उठ खड़े होने की इच्छा से सरोबार होने लगता है। यह एक समानान्तरता की भावना है जो पहचान के लिए भीतर ही भीतर कसमसाती है।" (हरपाल सिंह 'अरूष' दलित साहित्य की भूमिका पृ.-63) भारतीय होने के बावजूद अपनी पहचान बनाने के लिए समुदाय विशेष को संघर्ष करना पड़े, हीनताबोध से मुक्ति के लिए अस्तित्व को प्रतिष्ठापित करने की निरंतर कोशिश, संघर्ष, आंदोलन का सहारा लिया जाने लगा। सामान्य तौर पर आधुनिक भारत में चिंता का विषय होना चाहिए था। संवैधानिक अधिकार हासिल करने के लिए वैज्ञानिक सोच की जरूरत है जिसे अपनाकर शायद भारतीय समुदाय जाति की मूल अवधारणा को ही नकार दे। वही सामाजिक संरचना में परिवर्तन की संभावना पैदा कर सकते हैं।

1.3 मराठी दलित कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता

दलित साहित्य अपनी मूल प्रकृति में मानव मुक्ति का साहित्य हैं और मानवीय मूल्य प्रणित जीवनवादी कला मूल्यों की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। दलित साहित्य के केन्द्र में वह इंसान है जिसे जातिव्यवस्था के कठोर बंधनकारी रूढ़ी-परंपराओं ने बहिष्कृतों का जीवन जीने को बाध्य किया। यह बाध्यता स्वयं अपनाई नहीं थी, इसे वर्ण-जातिप्रधान सामाजिक संरचना का निर्माता ब्राह्मणवाद ने सोचे समझे षडयंत्र द्वारा उनपर लाद दी थी जिससे शोषित-वंचित समुदाय ऊपर उठ न सका। धर्म के सहारे और ईश्वरीय संरचना के मिथ्या प्रचार-प्रसार से जाति व्यवस्था को अपरिवर्तनीय घोषित कर दिया गया। जातिनिहाय भारतीय सामाजिक संरचना द्वारा बनाए जाति के दायरों को तोड़कर एक समूह दूसरी जाति में प्रवेश नहीं कर सकता। जाति आधारित पुश्तैनी धंधे, पेशे करने को बाध्य करके

जीवन को असहनीय बना दिया। जाति-प्रथा के ये कठोरतम विधि-विधान धार्मिक ग्रंथों का षडयंत्र था, जिसको मनु ने अंतिम रूप दिया। ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, भाग्यवाद, वर्ण जाति के संजाल रचकर जातिव्यवस्था का निर्माण किया गया। बाद में एक सौ बाईस ग्रंथों द्वारा मनु जैसे सनातनी ब्राह्मणों ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की अतार्किक निर्मिति को जायज बताया। ईश्वर द्वारा इसकी निर्मिति का झूठ, सच में बदलने के लिए षड्यंत्र रचा गया तथा जातिव्यवस्था की अपरिवर्तनीयता को धार्मिक भय दिखाकर तीन हजार वर्षों तक दलितों (अछूत, अस्पृश्य, अंत्यज) को दास बनाए रखने में सफलता हासिल की। इस गुलामी के विरोध में उठा प्रतिरोध का स्वर ही दलित साहित्य है। दलित साहित्य इंसान की स्वतंत्रता, समता और न्याय के प्रति समर्पित है, वह इंसान की महानता के गीत रचता और गाता है। वह इंसान को बहिष्कृत, गुलाम एवं उपेक्षित बनाने वाले धर्म, ईश्वर, वर्ण को नहीं मानता। जन्म और कर्मफल, भाग्यवाद जैसे अंधविश्वासों को जन्म देनेवाली उन धार्मिक संस्थाओं को नकारता है। हिन्दू धर्म के खोखलेपन, अवैज्ञानिकता और कर्मठता को चुनौती देता है। मराठी दलित कवि शोषित-उत्पीड़ितों की वेदना-पीड़ा तथा आशा-आकांक्षाओं को शब्दबद्ध करके मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने की इमानदार कोशिश करते हैं। सनातनी परंपरा द्वारा हजारों वर्षों तक ईश्वर निर्मित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के झूठे मिथक गढकर दलितों के साथ किए अमानुष व्यवहार का विरोध दलित कविता का मुलभूत उद्देश्य है।

दलित साहित्य में अभिव्यक्त संघर्ष एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से नहीं, बल्कि एक वर्ग का दूसरे वर्ग से है। इसलिए 'दलित कविता' घोषित करती है कि इस कविता का नायक व्यक्ति नहीं, समाज है। समाज मन की हलचल इस कविता में मानवीय भावनाओं के हिलोरे और लय बन जाती है। सामाजिक स्थितियों कि वास्तविकता को कविता स्पष्ट करती है क्योंकि इस कविता की जड़े जीवन में व्याप्त विषमता और सांस्कृतिक भ्रष्टता से निर्मित अमानवीय स्थितियों में गहरी छुपी हुई हैं। दलित कविता ने सर्वप्रथम मराठी भाषा में अभिव्यक्ति पाई लेकिन अब इसका अनुभव-क्षेत्र संपूर्ण भारतीय भाषाओं तक फैल गया है। इसलिए देश के कोने-कोने में हो रहे शोषण, उत्पीड़न एवं अत्याचार को दलित कविता ध्वनित करती है। यह वर्तमान की वास्तविकता से संपृक्त दलित जीवन की कविता है। परंपरा का वहन करने वाली अभिजात्य कविता से उसका कोई नाता नहीं है।

दलित कवि अब डॉ. आंबेडकर के विचारों के तेज से प्रज्वलित होकर इस जाति प्रणित समाज व्यवस्था को नष्ट करने की अंतिम कारवाई के लिए प्रतिबद्ध है। मराठी के वरिष्ठ कवि नामदेव ढसाल भारतीय समाज व्यवस्था को बदलकर नए समाजवादी समाज की निर्मिति का स्वप्न देख रहे है :

मेरे लहू में प्रज्वलित अगणित सूर्य
कितने दिन सहोगे यह घोर बंदीवास
क्या बने रहोगे ऐसे ही युद्धबंदी?
देखो रे साथियों मिट्टी की अस्मिता
आकाश भर में फैल चुकी
मेरी आत्मा ने जिंदाबाद की घोषणा कर दी
मेरे रक्त में प्रज्वलित अगणित सूर्य
अब इस नगर-नगर को चिंगारी से भर दो।
(नामदेव ढसालः गोलपीठा)

कवि दलित चेतना के विकास की ओर इशारा करके कहता है कि अब इस पुरातन यथास्थितिवादी संस्कृति की जो धर्म और कर्मकांड से जर्जर हुई है और उससे उपजी इस अमानवीय सभ्यता को जलाकर एक नई व्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता है।

दलित कविता में अभिव्यक्त मुक्ति का विचार समाजवादी जनतंत्र को सही मायने में लागू करने की प्रेरणा देता है। कवि का यह संकल्प उनके शब्दों में इस प्रकार प्रकट होता हैः

दया पवार 'तुम्ही प्रकाशाचे पुंज व्हा' (आप ही प्रकाशपुंज बनो) कविता में दलितों को आह्वान करते नजर आते हैः

'तुम ही प्रकाशमान होकर क्रान्ति का जयघोष करो' (दया पवार : कोंडवाडा)

1.4 रचनाकार : व्यक्तित्व एवं रचनाबोध

दया पवार

दया पवार मराठी दलित साहित्य के प्रमुख रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं ने मराठी साहित्य को न केवल समृद्ध किया बल्कि नये सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण भी किया। संवेदनशील प्रतिबद्ध रचनाकार की बहुमुखी प्रतिभा ने दलित साहित्य को अमूल्य रचनाएँ दी हैं। उनकी कविता, कहानी, आत्मकथन और निबंध आदि दलित साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इनके प्रमुख कविता संग्रहों में 'कोंडवाडा' (कांजी घर) 1974 और 'पाणी कुठवर आलंग बाई!' (सखी, पानी कहाँ तक आया?) शामिल है।

'कोंडवाडा' कविता संग्रह बहुचर्चित काव्य संग्रह है, जिसने पहली बार दलित जीवन की तल्ख़ सच्चाई से भारतीय समाज को परिचित किया। दलित जीवनानुभव और संघर्ष को काव्यात्मक अभिव्यक्ति द्वारा मुखर स्वर दिया। इस अनोखी अभिव्यक्ति से मराठी के अभिजात्य लेखक, आलोचक तथा वाचक वर्ग चकित हो गया। दया अतिशय संवेदनशील सार्थक शब्दों में प्रस्थापित समाज के अमानुा शोषण, उत्पीड़न को मर्मांतक आक्रोश और विद्रोही अभिव्यक्ति द्वारा सदियों के संताप को उजागर करके भारतीय समाज को अंतर्मुख करते हैं। सदियों के संचित संताप को दया की कविता समाज के समक्ष रखती हैं।

'बलुतं' (अछूत) दया पवार का आत्मकथन; भारतीय दलित साहित्य में प्रकाशित प्रथम आत्मकथन है। इस संबंध में मराठी के प्रखर आलोचक रा.ग. जाधव का मंतव्य विचारणीय हैः "दलित जीवनानुभवों को आत्मथनात्मक शैली में चित्रित कर दया पवार ने प्रस्थापित व्यवस्था को झकझोर दिया है। जीवनभर जातिदंश की कटुता को झेलकर एक प्रबुद्ध रचनाकार भारतीय समाज और संस्कृति की मूल्य-मान्यताओं की संकीर्णताओं को उजागर करता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक शोषण परंपरा की परत-दर-परत खोलकर यह आत्मकथन समाज को दलित जीवन में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, वेदना, अभाव, असम्मान, आर्थिक निर्भरता से पैदा हुई दीन-हीनता का बोध कराती है। ब्राह्मणवाद की जड़ों को मज़बूत करनेवाली धर्म, ईश्वर, वर्ण और आर्थिक की संस्थाओं की अमानुषता, अन्यायी वृत्ति और गुलाम बनाए रखने की नृशंसता को यह आत्मकथन प्रकाश में लाता है।" दया पवार अमेरिका के 'फोर्ड फाउंडेशन अवार्ड' और भारत सरकार के 'पद्मश्री' पुरस्कार से सम्मानित किए गए हैं। 'विटाळ' छुआ-छूत, 'चावडी' (चौपाल) उनके दो कहानी संग्रह है। कहानी संग्रह में संकलित कहानियाँ दलित जीवन के पीड़ादायी यातनापूर्ण और अवमानना के दर्दनाक अनुभवों की अभिव्यक्ति दलित जीवन के सद्यस्थिति यथार्थ से हमें रूबरू करती है। इनकी कहानियाँ दलित जीवन के बहुआयामी उत्पीड़न, बहिष्करण और वंचितता में जीने की त्रासदी को नया अर्थबोध प्रदान करती हैं। दया पवार द्वारा रचित गीत संग्रहों के गीतों को अनेक प्रतिष्ठित गायकों ने स्वर देकर महाराष्ट्र में इन गीतों को बेहद लोकप्रिय बना दिया। 'बाई मी धरणं बांधते' (सखी, मैं बाँध बनाती हूँ) की कविताएँ गीतों के रूप में श्रमिक-मजदूर संगठनों, ट्रेड यूनियन्स के कार्यक्रमों में गाए जाते हैं अब ये मजदूर संघर्ष और आंदोलन के गीत बन चुके हैं। कवि के रूप में प्रतिष्ठित दया पवार का काव्यलेखन श्रमिक-मजदूरों की समस्याओं को उजागर

करके उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ 'बलुत', 'कोंडवाडा', 'विटाळ' आदि देश के अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल है तथा अनेक भाषाओं में इनके अनुवाद हो चुके हैं तथा उनकी रचनाओं पर अनेक विश्वविद्यालयों में शोधकार्य भी हो चुके हैं।

ज्योति लांजेवार

मराठी में सशक्त लेखन के लिए ज्योति लांजेवार का नाम पहली पंक्ति की रचनाकारों में शामिल है। ज्योति लांजेवार वरिष्ठ कवयित्री ही नहीं बल्कि एक लब्धप्रतिष्ठित समीक्षक भी हैं। उनके कई कविता संग्रह प्रकाशित है। जिनमें क्रमशः 'दिशा', 'अजून वादळ उठले नाही' (तूफान अभी उठा नहीं,) भाब्द 'निळे आभाळ' (नीले आकाश के भाब्द) आदि चर्चित रहे हैं। समीक्षात्मक ग्रंथसंपदा में 'दलित साहित्य समीक्षा', 'फुले आंबेडकर स्त्री मुक्ति चळवळ, (फुले आंबेडकरः स्त्री मुक्ति आंदोलन) उल्लेखनीय है। 'माँ' यह कविता प्रस्तुत पाठ्यक्रम में अध्ययन हेतु आपके सामने है।

दलित स्त्री के दिन रात श्रम करने की क्षमता रखती है। वह अपने बच्चों को शिक्षित करने की अभिलाषा जताती है। श्रम की कठोर साधना से जीवन की प्रगति को साकार करना चाहती है। ज्योति लांजेवार 'माँ' कविता में डॉ. आंबेडकर के आंदोलन में सक्रिय है। वह दलित मुक्ति हेतु आंबेडकर के विचारों पर कार्य करने तथा अपने आत्मसम्मान के खातिर संघर्ष की प्रेरणा देती है। एक दलित स्त्री द्वारा सामाजिक परिवर्तन एवं न्याय के लिए दिए जा रहे योगदान को कविता में मुखर किया गया है। कविता के द्वारा कवयित्री प्रतिबद्धता से जीवन को गरिमामय बनाने की कोशिश करती है।

1.5 'वृक्ष' कविता का पाठावलोकन

मराठी दलित कविता के वरिष्ठ कवि दया पवार और ज्योति लांजेवार की कविताओं का अध्ययन प्रस्तुत इकाई में आप को करना है। दोनों कविताओं का मूल्यांकन एवं विश्लेषण आप स्वतंत्र रूप से करेंगे। आइए मराठी दलित साहित्य के वरिष्ठ कवि दया पवार की कविता का पाठावलोकन करेः

'वृक्ष'

दुःख भार से थरथराता वृक्ष देखा मैंने
बोधिवृक्ष के समान गहरी जड़ोंवाला
बोधिवृक्ष पर तो फूल भी खिले
यह वृक्ष हर मौसम में झुलसा हुआ
नस नस से यातना फूटती है
झर गए पत्ते कुष्ठरोगी की ऊंगलियाँ हो जैसी
ठूंठ हुए वृक्ष की डाल-डाल बैसाखी के सहारे
जब तक जिंदा है मरण यातना सहते हुए
दुःख भार से काँपता वृक्ष देखा मैंनेए

1.5.1 जाति दंश की मर्मांतक वेदना

दलित कविता की अभिव्यक्ति समूह मन की अभिव्यक्ति होने के कारण कविता में समूह के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन संदर्भ की परत-दर-परत खुलती जाती हैं। दया पवार की कविता 'वृक्ष' दलित जीवन के सामुहिक दुःख, वेदना, विवंचना, आर्थिक अभाव, जाति विरोध, क्षोभ, आक्रोश को अभिव्यक्त करती हैं। भारतीय सामाजिक संरचना के सबसे निचली पायदान पर खड़े वंचित-शोषित पहचानहीन हाशिए के समूह मन की

व्यथा को अत्यंत प्रखर भाषा में अभिव्यक्ति ही है। दलित कविता की मूल प्रवृत्ति विद्रोह, निषेध और संघर्ष के तीखे तेवर की है। यह विद्रोहात्मक तेवर उस व्यवस्था के विरोध में अपनाया गया, जिसकी बुनियाद अतार्किक, अविज्ञानी, अंधविश्वासों पर आधारित है। इस पुरोहिती अवधारणा का जन्म ही अवैज्ञानिक झूठ से हुआ। ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति मानी गई। इसे विश्वास में बदलने के लिए स्वयं को श्रेठतम घोषित करने वाले ब्राह्मण वर्ण ने अन्यों को निम्नतर रखने के लिए धर्म की निर्मिति और विधि-विधान रचे। धर्मग्रंथों के अंबार रचकर चातुर्वर्ण्य में सबसे निम्न घोषित किए गए शूद्र-अतिशूद्रों को अस्पृश्य अशूचि के रूप में ही पैदा होने की मान्यता को स्थायी रूप देने के लिए एक विचारधारा का निर्माण किया। इस प्रकार ब्राह्मण वर्ण जोकि परजीवि संस्कृति का निर्माता, तथा लाभार्थी थे, ने अछूतों को गुलाम बनाएं रखने में सफल हुए। दलित जीवन में व्याप्त सघन पीड़ा जो कवि की अपनी भी है, उसे व्यवस्था के विरोध के लिए जागरूक कदम उठाने को प्रेरित करती है। कवि के लिए यह असहनीय स्थिति है, क्योंकि उनमें अस्तित्व बोध जग चुका है, वे जान गए हैं कि उन्हें वंचना, भूख और यातना देने वाला प्रस्थापित वर्ग ही है, जिसने सत्ता को अपने अधीन कर सदियों से वंचितों पर हिंसा, अत्याचार, और उत्पीड़न द्वारा अनंत युगों तक वर्चस्व स्थापित कर लिया। ऊपर उठने के उनके हर एक प्रयास को हिंसात्मक कारवाई से रोका गया। गुलामी की श्रृंखलाओं को अधिक कसा गया। वर्चस्ववाद की भूख के आगे इंसानीयत के सभी पैमाने झूठे साबित हुए। वरिष्ठ दलित कवि वामन निंबाळकर अपनी वेदना को शब्दबद्ध करते हुए कहते हैः

शब्दों में न समाए इतनी कथा-व्यथा
कहते हुए हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाए
पतनोन्मुख इंसान ने/ तोड़ दिए कगार/ इंसानियत के
पहचान के लिए/अनुठा संघर्ष करना पड़े,
यह इंसानियत पर सवालिया निशान है।

दलित रचनाकार के स्वानुभवों की अभिव्यक्ति से दलित कविता का कलेवर इंसानी यातना, पीड़ा, व्यथा का जीता जागता वृक्ष बनकर दया पवार की कविता में चित्रित होता है।

यातना भार से व्याकुल वृक्ष देखा मैंने
बोधिवृक्ष जैसी इसकी भी जड़ें
जमीन के अंतस तक गड़ी हैं।
बोधिवृक्ष पर तो फुल भी खिले
यह वृक्ष सभी ऋतुओं में झुलसा हुआ

मानव के सम्मान को दलित कवि सर्वोच्च मानते हैं, इसलिए मानवता की हत्या करनेवाली प्रस्थापित शक्तियों के विरोध में प्रखर चोट करने वाले स्वर में अपना प्रखर विरोध प्रकट करते हैं। दलित कवि त्र्यंबक नये जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए नए मानव का आवाहन करते हुए कहते हैः

ओ। अभागो!
जगाओ अपने अंदर छिपे मनुष्य को
जिससे आएगा प्रकाशमान नया सवेरा
मनुष्य की महानता का।

तीन हजार वर्षों से छीन ली गई पहचान हासिल करने के संकल्प के साथ दलित कवि ने रचनाकर्म द्वारा आंदोलन छेड़ा है जिसकी परिणती हम नए प्रकाशमान सवेरे में इंसान

की महानता के गीत गाए जाने में देख सकेंगे। दलित रचनाओं ने यह विश्वास जगाया है। सन् 1927 को महाड़ में पानी जैसी बुनियादी जरूरत के लिए, जो मानवीय हक है, के लिए संग्राम लड़ा गया, इतिहास के पन्नों पर दर्ज हो गया। श्रेष्ठता और वर्चस्व के अहंकार को ध्वस्त करके अस्मिता के प्रति सजग दलित समुदाय सदियों की थोपी हुई गुलामी को छोड़कर, एक नागरिक के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सचेत होकर रचनात्मक संघर्ष की अगुआई करने लगा है। उसने अभी तक भी अपने निम्न होने की स्थिति पर धर्म के भय के अंधविश्वास से झकझोर कर जगाया है। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी की चिंगारी से प्रज्वलीत यह समाज भविष्य को अधिकाधिक प्रकाशमान करने की कोशिश में है। वर्ण-जातिवादी संरचना के षडयंत्र का पर्दाफाश करके सदियों से गुलामी के बोझ से झुके दलित समुदाय के आत्मज्ञान को जगाए रखते हैं। दया पवार उस दारूण दुःख-यातना को झेलने वाले समुदाय की जर्जर स्थिति को उजागर करके चेतना को सदैव प्रवाहमान रखने की कोशिश में उस खौफनाक यातनापूर्ण जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं -

यातना भार से व्याकुल वृक्ष देखा मैंने
बोधिवृक्ष जैसी इसकी जड़ें गहरी हैं
बोधिवृक्ष पर तो फूल भी खिले
यह वृक्ष सभी ऋतुओं में झुलसा हुआ।

1.5.2 वर्णव्यवस्था को प्रश्नांकित करती कविता

दया पवार दलितों की जर्जर सामाजिक, आर्थिक स्थिति के प्रति अतीशय चिंतित होकर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के निर्माताओं पर तीव्र प्रहार करते हुए कहते हैः

बोधिवृक्ष पर तो फूल भी खिले
यह वृक्ष सभी ऋतुओं में झुलसा हुआ।
धमनी-धमनी से फट पड़ती यातनाएं।
झर गए पत्ते महारोगी की ऊँगलियाँ हो जैसी

सभी ऋतुओं में झुलसे हुए वृक्ष के प्रतीक द्वारा दलितों की वंचित-शोषित-निर्धन स्थिति से परिचित कराते हैं। वृक्ष का प्रतीक अस्पृश्य माने गए जीवन की त्रासदी को उजागर करने में सफल हुआ है। 'यातना भार से व्याकुल वृक्ष' के प्रतीकात्मक रूप द्वारा उत्पीड़न वेदना और पर्वत प्रायः दुःख झेलता वंचित समुदाय और उसके जीवनानुभवों को उजागर करके कवि जनमानस में से क्रांति गर्भित विचारों को फैलाना चाहता है। जाति व्यवस्था ने दिए तमाम जाति दंश, वंचना, अपमान, अन्याय-अत्याचार के गहरे जख्म, बहिकार से दग्ध जीवन की तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत की है। साधनहीनों की दरिद्रता को स्वाधीन लोकतांत्रिक देश में कायम रखने की बर्बरता को कवि समर्पक एवं सधे हुए शब्दों में रेखांकित करने में सफल हो जाता है। अन्यायपूर्ण, असहिणू, अमानवीय विषमता की दीवारें अभी भी संपन्नों और निर्धनों के बीच एक दरार बनकर खड़ी हैं। आर्थिक और सामाजिक विषमता की दरार इतनी चौड़ी है कि उसे पाटना असंभव मान लेना चाहिए। देश भले ही आजाद हो गया लेकिन वर्ण-ईश्वर-धर्म द्वारा गुलाम बनाए गए समुदाय अभी भी गुलामी की जकड़न से मुक्त नहीं हो सके हैं।

परिणामतः दलित बस्तियों से अभाव, और भूख का सायाँ हटता नजर नहीं आता। राज्य सरकार के मातहत आनेवाले सरकारी विभागों के अधिकारी, पुलिस, न्यायपालिकाएं भी भेदभाव की नीति अपनाने में कतराते नहीं बल्कि राजनीतिक माहौल को असंवेदनशील, अमानवीय, बनाने में सहायक की भूमिका का निर्वाह करते हैं। जीवन, स्वास्थ्य, रोजगार और निवास के सुरक्षा की माँग लेकर देश के कोने-कोने में चल रहे जल-जंगल-जमीन

के संघर्ष इन्हीं कारणों से सफल नहीं हो पाता। राज्य सरकारें अपने इन्हीं विभागों के जोर-जुल्म द्वारा संघर्ष की आवाजों को खामोश कर देते हैं। खुद को दलितों के समर्थक, उनके हितैषी बताने वाले शासनकर्ता भी सत्ता के नशे में चूर होकर जीवन की बुनियादी मांगे भी खारिज करने में हिचकती नहीं है। दया पवार दलितों की इस बेबसी और जुल्म झेलते रहने की त्रासदी को बर्दाश्त नहीं कर सकते। उनकी पूरी चाहत है कि ऐसे समुदाय की सामुहिक यातना को वे अभिव्यक्ति देकर क्रांति की ओर कदम बढ़ाएं। भारतीय समाज में सहिष्णुता, करूणा और मैत्री का भाव जगाने के लिए समुदाय की जर्जर अवस्था का यथार्थ चित्रण अत्यंत विााद भरे शब्दों में वे करते है :

नस-नस से फट पड़ती यातनाएं
झर गए पत्ते महारोगी की ऊँगलियाँ हो जैसी

करुणा से भरी, यातनामयी सामाजिक वेदना की गंभीर अभिव्यक्ति दलित कविता के नकार और विद्रोहपूर्व स्थिति से अवगत कराती हैं। विद्रोहात्मक अभिव्यक्ति चूंकि दलित कविता का प्राणतत्व है इसलिए आत्मभान के जगने पर अभिव्यक्त होने वाला विद्रोह नामदेव ढसाळ के इन शब्दों में भी हमारे सामने आता है :

मैं तुम्हारे ग्रंथों को।
तुम्हारी संस्कृति को।
तुम्हारे दोगलेपन को गाली दूंगा।
मैं यह सब नहीं कहता लेकिन मेरे हाथ जग चुके हैं।

मरणप्राय दुःख से तड़पता समुदाय हजारों वर्षों से इसे झेलने को अभिशप्त कर दिया गया। परजीवि ब्राह्मणवादी अहंकारी समुहों ने खुदगर्जी की ऐसी घिनौनी व्यवस्था को रचा जिसकी मिसाल संपूर्ण विश्व में नहीं मिलेगी।

आधुनिक और स्वाधीन भारत में सामाजिक संरचना जाति आधारित ही बनी रही। क्योंकि मनुष्य के जन्म लेने की सामान्य (वैज्ञानिक) जानकारी के बावजूद एक गढ़े गए झूठे मिथक पर विश्वास रखकर पूरातन परंपराओं का निर्वाह आज के युग में किया जाना, सच में आश्चर्य में डालता है। भारत का जनमानस एक मिथ्या आडंबर को ढोकर विकास की बात भी कैसे सोच सकता है? सामाजिक सच्चाई से मूँह मोड़े हुए घनघोर अंधविश्वास में डूबे रहना हमारी संकीर्णता को दर्शाता है। वास्तविकतः यह पाखंड अंधविश्वास को जन्म देने वाली पुरोहिती सोच का नतीजा है।

ठूंठ हुए वृक्ष की डाल-डाल
बैसाखी के सहारे टिकी हुई
जब तक जिंदा है मरण यातना
सहते हुए
दुःख भार से काँपते वृक्ष को देखा

दलित कवि की दृष्टि में दलित समुदाय का जीवन भी ठूंठ हुए वृक्ष जैसा ही है जो हर क्षण जीवन की प्रत्येक जरुरत के लिए जमींदार, साहुकार, महाजन, व्यापारी और सरकारी अधिकारियों की मेहरबानी पर निर्भर है। बैसाखियों का सहारा उसे जीवन के अंत तक लेना जरुरी है कि क्योंकि रोजगार, समय-समय पर लिया जाने वाला ऋण, और घर बनाने लायक जमीन का टुकड़ा बिना सवर्णों की मंजूरी के नहीं मिल सकती। इस प्रकार सवर्णों पर दलित समुदाय की पूर्णरूप से निर्भरता के कारण वे हमेशा उन पर आश्रित रहें। दया पवार इस त्रासदी से अतीशय संतप्त होकर प्रस्थापित व्यवस्था को प्रश्नांकित करते हुए कहते हैः

जब तक जिंदा है/मरण यातना सहते हुए
दुःख भार से काँपते वृक्ष को देखा मैंने

प्रस्तुत कविता में चित्रित सामाजिक स्थितियाँ यहाँ के विाम समाज व्यवस्था की निर्मिति है। यह असंतुलित स्थिति आजादी के बाद के आधुनिक समाज में बदलेगी और सांस्कृतिक दमनमुक्त समतावादी समाज में दलितों को आर्थिक सबलता के साथ छुआछूत जैसी बर्बर रूढ़ियों से छुटकारा मिलेगा। मानवीय प्रतिष्ठा के वे हकदार बनेंगे। लेकिन विषमताजन्य विचारधारा पर विश्वास करके अस्पृश्यता, सामाजिक बहिष्कार, तिरस्कार करने वाले समाज ने दलितों की समस्याओं पर विशेष लक्ष्य केन्द्रित नहीं किया। संविधान ने दिए अधिकारों का भी लगातार कर्मठ हिंदू समाज उल्लंघन करता रहा और सामाजिक-आर्थिक-शैक्षिक बराबरी के तमाम प्रयास अधूरे और असफल कर दिए गए। परिणामतः दलित समुदाय आजाद भारत का नागरिक होने के बावजूद शोषण, दमन, हिंसा, उत्पीड़न, यातना, पीड़ा झेलने को अभिशप्त है। इस व्यवस्था ने दिए सदियों के जख्म लेकर कैसे कोई यह कह सकेगा कि वे एक स्वाधीन देश के स्वाधीन नागरिक है? देश के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर ने जातिव्यवस्था के समूल उन्मूलन के लिए अपना संपूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया। संविधान में वे सभी प्रावधान, कानून मौजूद है, जो जघन्य अस्पृश्यता को जड़ से मिटा सकते हैं। परन्तु जातिव्यवस्था के रहते लाभान्वित वर्ण-जातियाँ नहीं चाहती कि यहाँ एक बराबरी का समाज बने जिनमें कोई श्रेष्ठ न हो न कोई निम्न हो। इसलिए प्रस्थापितों ने समतावादी सोच ही निष्प्रभावी कर दी और सदियों तक हिंसात्मक कारवाइयों द्वारा इन्हें दबाकर रखा। व्यवस्था परिवर्तन के लिए जितने प्रयास संभव हो सकते थे, कानूनी, प्रावधान, सुरक्षितता, विकास में भागीदारी का आश्वासन सभी जातिप्रथा और छुआछूत के अभिशाप के सामने धरे-के-धरे रह गए। अतः कवि अपने हाथों के जगने के संकेत देकर अत्यंत प्रखर भाषा में प्रस्थापित व्यवस्था की जर्जर अवस्था पर आघात करते हैं। डॉ. आंबेडकर की परिवर्तनवादी, समतावादी, न्याय और स्वाधीनतावादी वैचारिकी को अपने सृजनशील प्रयासों में आत्मसात करके बराबरी के समाज निर्माण की घोषणा करते हैं। आप जब इस कविता का अध्ययन कर रहे हैं, तो इसकी प्रत्येक पंक्ति में समाविष्ट विद्रोही चेतना की आँच को स्वयं भी महसूस करेंगे।

1.6 'माँ' कविता का पाठावलोकन

माँ

तुझे कभी नहीं देखा, जरी किनारी साड़ी में
न गले में मोतियों की माला, कंगन कड़े पहने
रबड़ की चप्पले तक नहीं तुम्हारे पैरों में
झुलसती धूप में जलते तलवे
झुले को ममता के साथ बबुल पर टांगे
तार कोल भरे कनस्तर ढोते
तुझे देखा मैंने
चिंधियों से ढके नन्हें पैरों पर दौड़कर आते
लाडले का पसीने भरा चुंबन लेते हुए
भूख से ऐंठती अंतड़ियों को भूलने की कोशिश करती
पानी बिना सूखे होठों से
रोजगार सुरक्षा योजना में बन रहे
तालाब का बांध बनाते
तुझे देखा मैंने

आँखों में आसुओं का पावस भर कर
और जिंदगी जैसे नपता धुपकाल
दोपहर का सूरज ढलने तक
बीने कपास पोटली में संभाले
एक एक कतारदर कतार
बाल-बच्चों का भविष्य संवारते
तुझे देखा मैंने
भीड़ भरी सड़क पर टोकरी संभालते
फटे आँचल में खुद को लपेटे
बुरी नजरों को धमकाते
भरे चौंक में हाथ में चप्पलें लिए
तुझे देखा मैंने
आँखों में चार दीवारों का सपना लिए
बहुमंजिला इमारतों की सीढ़ियों पर
गर्भ भार को संभाल पैर रखती
रेत सिमेंट का मलबा ढोती
तुझे देखा मैंने
शामपहर में पल्लू की गांठ खोलकर
तेल नमक खरीदती
पांच पैसे मेरी हथेली पर धरकर कहती
मिठाई लेकर खा, लेकिन स्कूल जरूर जाना
पालने के नन्हे को दूध से लगाती
कहती- "आंबेडकर जैसे बनना बेटा
तब ही छुटेगा हाथ का तसला"
तुझे कहते सुना मैंने माँ
घर लौटते हुए तेज तेज कदम
अस्थिपंजर सी देह, घरगृहस्थी का बोझ
साहूकार का कर्जा, जैसे हल की फाल
सुबह श्याम रहते आधे पेट
लेकिन स्वाभिमान की खातिर
मुफ्त की रोटी का धिक्कार करते
तुझे देखा मैंने माँ
नामांतर संघर्ष के अगली पंक्ति में
नारा देती 'नामांतर होना ही चाहिए'
पुलिस की लाठी हाथ पर झेलकर
हँसते-हँसते जेल में जाते हुए
पुलिस की गोली से शाहिद हुए
इकलौते बेटे के लिए कहते हुए
अरे, 'तुम भीमराव के लिए शहीद हुए
जन्म तुम्हारा सार्थक हुआ।'
पुलिस से कहते सुना मैंने

और भी होते दो-चार तो मैं
भाग्यशाली कहलाती।

अस्पताल में अंतिम घड़ियों में साँस लेते
दीक्षाभूमि को दान देते
कहते सुना मैंने माँ
एक होकर रहना, स्मारक बनाना।
अंतिम साँस में जय भीम कहते
सुना मैंने माँ।

1.6.1 दलित स्त्री का जीवन संघर्ष और वर्णव्यवस्था

दलित रचनाकार ज्योति लांजेवार की चर्चित कविता 'माँ' भारतीय हिंदू व्यवस्था की उस आर्थिक नीति को अपनी तार्किक शैली में प्रश्नांकित करती है, जिसकी जड़ें यहाँ की अतार्किक जातिव्यवस्था में है। जाति संरचना की अमानवीय रूढ़ि-प्रथाओं ने समाज संरचना के साथ ही उत्पादन प्रणाली को इस कदर अपने धार्मिक शिकंजे में कसा है कि गत (जिन्हें आज दलित अस्मिताबोधी नाम से पहचान मिली है) साढ़े तीन हजार वर्षों से अधिक समय के बाद भी यह विधि-विधान जस का तस बना हुआ है। प्रस्तुत कविता धार्मिक आधार पर किए गए काम के बंटवारे का मंतव्य यहाँ स्पष्ट होकर हमारे सामने सफलता से प्रस्तुत करती है। कवयित्री यह देखकर चिंतित है कि इस विषम सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक स्थिति से जूझ रहीं माँ सामान्य सी लगने वाली सुविधाओं से भी वंचित है। श्रम की कठोर साधना के बावजूद वह गरीब, वंचित और उत्पीड़ित क्यों हैं? दिन-रात हाड़तोड़ परिश्रम के बाद भी उसे भूखा क्यों सोना पड़ता है? अपनी ममता का गला घोंट सड़क निर्माण के काम में पिघलता हुआ तारकोल मिला मसाला फैलाते हुए झुलसती गर्मि में बबुल पर टंगे झुले में सोए अपने कलेजे के टुकड़े को भी न देख सकें। कवयित्री यह प्रश्न दागती है कि इस व्यवस्था ने माँ के श्रम का न्यूनतम मूल्य भी क्यों उसे नहीं दिया? तभी तो वह भूखे पेट काम करने को मजबूर है, लाचार है पानी की कुछ बुंदे होठों से छुआकर तारकोल और तपते सूरज की गर्मि को सहते हुए काम पूरा करना उसके लिए अपरिहार्य है। भूख से ऐंठती अंतड़ियों को भूलकर लगन से काम में मग्न रहना उसके श्रमसाध्य कर्म की जरूरत है। ऐसे में चिंधियों से ढंके नन्हें पैरो पर माँ से ममता पाने के लिए दौड़े बालक को पसिने भरा चुंबन देकर वह उसे लौट जाने को कहती। श्रम और भूख के इस कोलाज (चित्र) को समाज के समक्ष रखकर कवयित्री इन सवालों को उठाकर गैरबराबरी के दर्शन को चुनौती देने का साहस करती है। वर्णवादी समाज ने दलित वर्ग से गुलाम जैसा व्यवहार किया और अभी तक भी करने से कतराता नहीं। ईश्वरीय सिद्वांतों के झूठे प्रचार ने अंतहीन दासता की जंजीरों को मजबूत बना दिया। कवयित्री निम्न पंक्तियों द्वारा हमारा ध्यान उस क्रूरतम विधि-विधान की ओर खिंचती है जिसमें शूद्र को धन संचय करने की मनाही है और यदि उन्होंने कानून का उल्लंघन कर ब्राह्मण को दुख पहुँचेगा तो इस स्थिति में ब्राह्मण को शूद्र की संपत्ति छीन लेने का अधिकार धर्मग्रंथों ने बहाल कर दिया। शूद्रों अर्थात् दलितों को निर्धन रखकर रोजगार के लिए अन्य तीन वर्णों पर निर्भर बना दिया गया। निर्धनता और निर्भरता की परंपरा साढ़े तीन हाजार वर्ा से आज तक निरंतर बरकरार है। यदि हम भारतीय आर्थिक व्यवस्था के उत्पादन साधनों के बंटवारे का अथवा उन पर अधिकार का जातियों के अनुसार मूल्यांकन करें एवं उपलब्ध दस्तावेजों के द्वारा मालिकाना अधिकार का ग्राफ तैयार करें, तो पायेंगे कि देश की अस्सी से पच्चासी प्रतिशत जमीन के मालिक मात्र कुछ जातियों के व्यक्ति है। दलित इनके खेतों पर काम करने वाले केवल हलवाहे हैं, दिहाड़ी मजदूरी पर या बंधुआ मजदूरी पर प्रस्तुत कविता में श्रमजीवि 'माँ' अनथक श्रम के बाद भी भूख से लड़कर, अपने बालकों के सुनहरे भविय के सपने देखती है। जीवन के प्रति यह जीजिविषा एक जीवंत समुदाय के संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर इंसान की जीवटता से परीचित कराती है।

दलित माँ के अभावपूर्ण स्थिति को उजागर करके शोषक समुदायों को उनके अन्यायपूर्ण व्यवहार का अहसास कराते हुए कहती हैः

तुमको कभी नहीं देखा, जरी किनारी साड़ी में
न गले में मोतियों की माला, न कंगन-कड़े हाथों में
खड़ की चप्पले तक नहीं तुम्हारे पैरों में

गरीबी का यह आलम की तारकोल के पिपें ढोती माँ अपने नन्हें बालक को झुलसती गर्मी में बबुल पर टंगे झुले में सुलाकर सड़क निर्माण कार्य में जुटी रहती है। ममत्व को इस प्रकार बबुल पर कपड़े के झुले में टांगना, ऊपर से झुलसती धूप पड़ती हो तो उस माँ पर क्या गुजरती होगी। ज्योति लांजेवार माँ की ममता उसकी विवशता को सशक्त बिंब और प्रतीकों द्वारा चित्रित करती है।

चिंधियों से लपेटे नन्हें नन्हें पैरों पर दौड़कर आए
लाडले का/पसीने भरा चुंबन लेकर/
भूखसे ऐंठती अंतड़ियों को भुलने की कोशिश।
पानी बिना सुखें होठ
रोजगार सुरक्षा योजना में बन रहे
तालाब का बाँध बनाते
तुझे देखा है मैंने।

1.6.2 दलित स्त्री की श्रमसाधना

सड़क निर्माण योजना में व्यस्त महिला मजदूरों को आपने समय-समय पर देखा होगा। हर माँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को कुछ थोड़े से बड़े बच्चों के सुपूर्द करके कोलतार के पिपें उठाती, सड़क पर बजरी और गिट्टी मिला तारकोल का घोल डालती हुई बड़े मनोयोग से काम में जुटी हुई दिखी होगी। कभी-कभी बीच में मुकादम से थोड़ी देर की छुट्टी लेकर नन्हें को दूध भी पिला देती। माँ को काम में लगा देख पैरों में चिंधिया लिपटा बालक नन्हें पैरों से जब माँ के पास दौड़ता है, तो माँ पसीने भरे होठों से लाडले का चुंबन लेकर उसे लौट जाने को कहती। यह दृश्य चित्र एक ऐसी सच्चाई से हमारा साक्षात्कार कराती है जिसे हम हर-रोज कहीं न कहीं जरुर देखते हैं। लेकिन इसके प्रति जिज्ञासा, स्थिति के प्रति चिंता कभी नहीं जगती। जीवन त्रासदी को हम समझते हुए भी नासमझी का ढोंग करके आगे निकल जाते हैं। यह दलित समुदाय के प्रत्येक मजदूर परिवार का जीवनानुभव है कवयित्री इस व्यवस्था पर सवाल उठाते हुए हमारे सामने वही सवाल रखती हैं। रचनाकार ने बहुत करीब से अपने समुदाय के लोगों के जीवन संघर्ष को देख है। अपनी माँ के इस परीश्रम, संघर्ष और जीने की जद्दोजिहद को बचपन से बड़े होने तक देखा है। इसलिए कविता के द्वारा वंचना के दर्द को महसूस कराकर उस स्थिति में वह परिवर्तन की माँग करती है। लोकतांत्रिक और आधुनिक समाज में भी जाति की दरारे इतनी गहरी है कि आज भी दलितों को अच्छी आमदनी वाले आर्थिक व्यवसाय करने से भी रोका जाता है। परंपरागत व्यवसायों से मुक्त होने की चाहत को जोर-जबरदस्ती, हिंसात्मक हमले, आगजनी, सामुहिक हत्या, स्त्रियों पर बलात्कार जैसे पाशविक अत्याचार द्वारा उन्हें पुनः परंपरागत व्यवसायों की ओर लौटाया जाता है। वैज्ञानिक तकनीकि के प्रचार-प्रसार के बावजूद हमारे देश में शुक शौचालयों की निर्मिति करके उसकी सफाई दलितों पर दबाव बनाकर और यह कहते कि यह तो उन्हीं का कार्य है। जैसी वर्णवादी सोच को थोपकर जबरदस्ती करवायी जाती है। दूसरों का मलमूत्र ढोने की अमानवीय प्रथा से मुक्ती के प्रयास इसीलिए सफल नहीं होते। समाज और ब्राह्मणवाद का दबाव इस कार्य से मुक्त होने की ईच्छा को फिर से दबा देता है। सदियों से जाति की सोपानीकृत व्यवस्था के

निर्माताओं ने पूर्व-जन्म, कर्म और भाग्य के डर द्वारा इसे इतना मजबूत कर दिया है कि इस प्रथा के अभिशाप को झेलने वाला दलित समुदाय खुद ही इस अमानुषिक काम को यह उनके भाग्य का हिस्सा मानकर ढो रहा है। प्रस्तुत कविता में पूर्व-परंपरागत रूढ़ी रीतियों को नकारकर एक मजदूर दलित माँ अपने बच्चे को बड़ा होकर डॉ. आंबेडकर जैसा शिक्षित और विद्वान बनाना चाहती है। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी का पिरणाम है कि हर दलित माँ अपने बच्चों के भविष्य के प्रति सचेत होकर सोचने लगी है। डॉ. आंबेडकर के क्रांतिकारी विचार को आत्मसात करके मजदूर दलित 'माँ' बच्चों के सुनहरे भविष्य का सपना बुनती नजर आती है। कवयित्री लिखती हैः

आँखों में आँसुओं की बरसात लिए
तपती धूप जैसी जिंदगी में
दोपहर का सूरज ढलने तक
कतार दर कतार घुमकर बिने कपास की पोटली छाती से चिपकाए
बाल बच्चों का भविय संवारते
तुझे देखा मैंने।

जीवन संघर्ष को अत्यंत सहज मार्मिक शब्दों में बयान करना सबसे कठिन रचनाकर्म है। कवयित्री दलित मजदूर माँओं के संघर्षपूर्ण जीवन को भावपूर्ण शैली में चित्रित करते हुए हमारा ध्यान उस ओर आकर्ति करती है जिससे वह हर रोज लड़ती हैं। वह लड़ाई भूख से है, भूख से लड़ते हुए जीने की जीजिविषा दलित स्त्री ने अपने पूर्वजों से विरासत में पाई है। तपती धूप में तपकर वह सूरज के ढलने तक पात दर पात से बिना हुआ कपास पोटली में हिफाजत से संभालती है। बच्चों के उज्ज्वल भविय को संवारने की आय उसके श्रम से ही उसे प्राप्त होगी। श्रम से प्राप्त आय से माँएं आने वाले समय को प्रकाशमान होते देखना चाहती है। इसलिए जोखिम भरे काम भी वह सहजता से करती है। जैसे किः

बहुमंजीला इमारतों की सीढ़ियों पर
गर्भ भार को संभाले पैर रखती
रेत सिमेंट के तसले ढोती
तुझे देखा मैंने माँ

हमे यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत की कुल स्त्री आबादी का 65 प्रतिशत स्त्री मजदूर वर्ग दलित-आदिवासी समुदाय से हैं। अन्य जातियों की स्त्रियाँ इन्हीं मजदूर स्त्रियों के श्रम पर भौतिक सुख, आराम और सुविधाओं का उपभोग करती हैं। दूसरा आश्चर्य यह कि केवल दलित-आदिवासी महिलाएं ही जान-जोखिम भरे कामों में कार्यरत हैं। लेकिन उनके श्रम का मूल्य इतना कम हैं कि उसके खुद के और परिवार के भरण-पोषण के लिए यह पर्याप्त नहीं हो पाता। भूख, गरीबी, उत्पीड़न और संत्रास से मुक्ति की चाहत में वह रोज जुझती रहती हैं। दलित कविता में भवियोन्मुखी स्वप्न, एक दृष्टि और एक विकल्प दिखाई देता है - समता, स्वतंत्रता और बहनापे का। डॉ. आंबेडकर के 'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हा' की क्रांतिकारी, परिवर्तनवादी सोच को आगे बढ़ाती है। अगली पंक्तियों में अपने बच्चों को शिक्षित करने का उदात्त सपना देखते हुए उनसे डॉ. आंबेडकर जैसा बनने का आश्वासन भी लेती हैं। जब अगली पीढ़ी पढ़ लिखकूर प्रबुद्ध होगी और आर्थिक दशा में सुधार होगा तो मेहनतकश दलित माँओं के हाथों को आराम मिलेगा। सुख-चैन से जीने की इस आशा से वह आज अधिकाधिक श्रम करते हुए भी नहीं थकती। दलित माँ के इस सपने को साकार होते हुए देखने की जीजिविषा को ही कवियित्री सशक्त शब्दों अभिव्यक्ति देती हैं।

शाम पहर घर लौटते हुए
पल्लू की गांठ में बंधे
पैसों से तेल नमक खरीदती
पांच पैसे मेरी हथेली पर धर
कहती 'मिठाई लेकर खाना'
मगर स्कूल जरुर जाना
पालने के नन्हें को
स्तन से लगाती कहती
'आंबेडकर जैसे बनना बेटा!'
तब ही छूटेगा हाथ का तसला

1.6.3 भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टि

अस्मिताबोध से संपृक्त कविता का विद्रोह हजारों वर्षों की शोषण परंपरा से है जिसने ऐसे समाज और संस्कृति की रचना की है; जो दलित के लिए सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य से निकासन और आर्थिक निर्भरता को अपरिवर्तनीय बताकर ईश्वरीय ईच्छा का नाम देता है। इस एक झूठे मिथक ने दलितों के आत्मसम्मान को बार-बार ठेंस पहुँचाई है। सन् 1977 में महाराष्ट्र के मराठवाडा विश्वविद्यालय का नाम बदलकर डॉ. आंबेडकर का नाम देने का महाराष्ट्र सरकार ने विधेयक पारित किया था। लेकिन सवर्ण समुदाय द्वारा सरकार पर दबाव लाकर इस निर्णय को सरकार द्वारा ही फिर से वापस लेने के लिए मजबूर कर दिया था। दलितों के सम्मान को ध्वस्त करने का यह निर्णय अलोकतांत्रिक एवं अन्यायपूर्ण था। इसके विरोध में राज्य भर में 'नामांतर आंदोलन' के बैनर के नीचे निकले लाँग मार्च में लाखों लोग शामिल हुए थे। यह अब तक का (सन् 1977) सबसे बड़ा 'लाँग मार्च' हैं, जिसकी एक विशेषता यह है कि इसमें सबसे अधिक संख्या में दलित स्त्रियाँ शामिल हुई थी। यह आत्मसम्मान के लिए लड़ा गया ऐतिहासिक संघर्ष था। जनांदोलन के समक्ष सरकार को अपना निर्णय फिर से बदलकर वापस लेकर नामांतर का अध्यादेश लागू करना पड़ा था। इसके बाद मराठवाडा विश्वविद्यालय को डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर विश्वविद्यालय नाम दिया गया। सैंकड़ों लोगों की शहादत देकर दलित अस्मिता संघर्ष में कामयाबी हासिल हुई। 'नामांतर आंदोलन' में शामिल माँ के साथ उनके बेटे-बेटियाँ भी जेल जा चुके थे। पुलिस के अत्याचार और गोली से शहीद हुए बेटे के लिए माँ 'भीम' के लिए शहीद होने का रूतबा देती है। वह इकलौते बेटे की मृत्यु पर रोती-बिलखती 'भीम'-डॉ. भीमराव आंबेडकर रहने वाली सर्वसामान्य माँ नहीं थी। 'भीम' के सम्मान के लिए लड़नेवाली चेतनाशील दलित स्त्री थी। कवयित्री दलित माँ के इस घिरोदात्त व्यक्तित्व को हमारे समक्ष रखकर चेतनापूर्ण इतिहास बोध से हमें अवगत कराती है। पंक्तियाँ है –

पुलिस की गोली से शहीद हुए
इकलौते बेटे के लिए कहते हुए
सुना मैंने
'अरे! तुम भीम के लिए शहीद हुए
जन्म तुम्हारा सार्थक हुआ
और भी होते दो-चार तो
मैं शहीदों की माँ कहलाती।'

दलित अस्मिता आंदोलन में सचेत दलित स्त्री स्वयंस्फूर्त सहभागिता दर्शाती है कि वह ब्राह्मणवादी परंपराओं को धिक्कारती है, उसे नकारकर समता, स्वतंत्रता और न्याय के नए ज्ञानमंदिर में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की तैयारी में है। कवयित्री जान चुकी है कि ब्राह्मणवादी परंपराओं ने सदियों तक ज्ञान से वंचित रखा था। उन्हें ज्ञान की परंपरा

से जुड़ने नहीं दिया था। देश की एक महत्वपूर्ण इकाई होते हुए भी धर्म, ईश्वर और वर्ण प्रथा के प्रभाव में गुलाम के दर्जे से ऊपर उठने नहीं दिया। आज के समय में दलित स्त्री इस छीने गए अधिकार को संघर्ष के द्वारा जनतांत्रिक तरिके से हासिल करने की क्षमता रखती हैं। वह इस बात से अवगत हो चुकी है कि स्वतंत्र और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व का निर्माण तभी संभव है जब मुक्ति पर लगी पाबंदियों का मुकाबला किया जाए। 'माँ' शरीर और आकांक्षाओं पर लगी उन सभी पाबंदियों को नकारकर एक स्वतंत्र, स्वायत्त और आत्मनिर्भर स्त्री की अवधारणा प्रस्तुत करती है। जो प्रस्थापित व्यवस्था की सत्ता संरचना का निषेध है।

1.7 दलित सौंदर्यबोध और जीवन दृष्टि

'वृक्ष' कविता के माध्यम से परंपरागत सौंदर्यमूल्यों को नकारकर दलित जीवन संदर्भ, परिवेश, चेतनाबोध से नए सौन्दर्य मूल्यों की रचना की गई है। दलित कविता जीवनवादी बोध, आशय और विचार चेतना की अभिव्यक्ति हैं। इस संदर्भ में यह बताना जरुरी होगा कि "दलित कविता केवल कविता नहीं है, वरन सदियों पुरानी विषमतामूलक सनातनी परंपराओं को दफन करने की एक विचारधारात्मक कारवाई है।" (विमल थोरात, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, भूमिका पृ. 23)

दलित सौंदर्यबोध जीवन की तलहटी से निसृत जीवन की सच्चाईयों को नए अर्थ देने की कोशिश है, अर्थात् संपन्न परजीवि वर्ग के कृत्रिम जीवन से जुड़े कला के आविष्कार से अलग श्रम से जुड़े जीवन के सौंदर्य की अभिव्यक्ति है। सामजिक स्थिति के कडवे यथार्थ, परिवेश के दबाव और जातिगत तिरस्कार के अनुभवों को काव्य का रूप देने में, विचारों को सम्प्रेषित करने में परम्परागत लावण्यमयी, कोमल पदावली दलित सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ थी। यहाँ दलित जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति के लिए कवियों ने गद्यात्मकता और लोकभाषा में कविता लिखकर ठहरे हुए गंदले पानी में कंकड़ फेंककर नए तरंग उत्पन्न किए। दलित कविता की भाषा के संबंध में कमलेश्वर का यह वक्तव्य विचारणीय है, दलित साहित्य के सभी लेखक गहरे जीवन संदर्भों से जुड़े हुए लेखक है, जिन्होंने व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को अलग करके समय के विस्तार में जी रहे आम आदमी की 'बोली' को रचनात्मक भाषा का दर्जा दिया है। इन्होंने अपने प्रदेशों, अंचलों, गली-कूचों, नगरों, महानगरों में बिखरी और वातावरण में समाई भाषा को नये अर्थ दिए हैं। 'कमलेश्वर' (दलित साहित्य संसद स्मरणिका तीसरा दलित साहित्य संम्मेलन, 28 जनवरी, 1979)

दलित कवियों ने परम्परागत भाषा, काव्यशिल्प, शैली तथा रूप प्रतिमानों को नकारा है, क्योंकि दलित जीवन के शोषण, उत्पीड़न, बहिकरण, अवमानना और वेदना-वंचना की अभिव्यक्ति उन साहित्य मानदंडों पर संभव नहीं। ऐसी काव्य परम्परा और सृजनात्मक भाव-भंगिमा को स्वीकारना दलित रचनाकारों की वैचारिकी के विपरीत था। दलित कविता दलित जीवनानुभवों को विशिष्ट शब्दावली में चित्रित करती हैं। समुची विषमतावादी संरचना के विरोध, नकार और विद्रोह की भाषा का तेवर अतीशय प्रखर होना स्वाभाविक है। मराठी दलित साहित्य के समीक्षक रा.ग. जाधव ने दलित भाषा के तेवर को निर्देशित करते हुए कहा है-"दलितों का शब्दबद्ध विचार शब्द की मोक्षदायी अथवा स्वर्गदायी शक्ति और उसकी दलितेतरों को अभिप्रेत संवेदन क्रीड़ा, संवेदन-लालित्य से अलग है। यह शब्दबद्ध विचार क्रांति, विध्वंस और आँसुओं का है, एकता का, स्वतंत्रता के क्रांतिकारी विचारों का निर्देशक है।"

इस कथन की सत्यता को अर्जुन डांगळे की निम्न कविता की पंक्तियों में देखा जाना चाहिए -

"वे जीते हैं साहित्य का इतिहास रचने के लिए
हम जीते हैं
युग का इतिहास रचने के लिए।"
(अर्जुन डांगळे, छावणी हलते आहे, पृ.44)

दलित कविता व्यक्तिगत अनुभवों से संपृक्त होने के साथ ही समूहमन अनुभवों की अभिव्यक्ति हैं, दया की कविता यातना को सहते हुए जनसमूह मन की अभिव्यक्ति को निम्न रूप में प्रकट करते है -

बोधिवृक्ष पर तो फूल भी खिले
यह वृक्ष हर मौसम में झुलसा हुआ।
नस-नस से यातना फूटती है

प्रतीक सृष्टि का निर्माण युगीन चेतना, आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाक्रम, सामाजिक परिस्थिति, ऐतिहासिक घटनाक्रम, प्राकृतिक वातावरण की प्रेरणा से होता है। दलित कविता के संदर्भ में प्रतीक अथवा बिम्ब इनके जीवन की सच्चाई को चित्रित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। सूरज, सर्प, आग, किरण, पहाड़, वृक्ष, तुफान आदि प्रतीक अब बदले हुए संदर्भ को प्रस्तुत करते हैं। 'अपमानित, पीड़ित, यातनामय जीवन की गाथा 'यातना भार से झुके वृक्ष' के प्रतीक रूप में साकार होकर उभरती है। ठूंठ हुए वृक्ष का प्रतीक दलित समुदाय को सामाजिक संरचना ने दिए असहनीय वेदना को सशक्त रूप में चित्रित करता है। वैयक्तिक अनुभव को समूहगत अनुभव की सान्निधि में रखने वाले तथा बाह्य यथार्थ को आंतरिक वेदना के सदृश्य रखने वाले प्रतीक इस कविता में गंभीर अर्थ भर देते हैं। 'वृक्ष' कविता में प्रयुक्त बिम्ब, व्यक्तिगत और समूहगत जीवन स्थिति के अनेक आयामों को समेटते हैं। इसका उदाहरण आपके सामने है, परंपरागत संस्कृति से मुक्त प्राकृतिक बिम्ब उनकी अभिव्यक्तिकों अधिक गहरे तक महसूस कराती हैः

झर गए पत्ते कुष्ठरोगी की ऊंगलियाँ जैसी
ठूंठ हुए वृक्ष की डाल डाल
बैसाखी के सहारे टिकी हुई
जब तक जिंदा है मरण यातना
सहते हुए
दुःख भार से काँपता वृक्ष देखा मैंने

ठूंठ हुए वृक्ष की शाखाओं को बेसाखियों के सहारे टिकाकर जीवित रखना। यह बिम्ब एक सघन छाया देनेवाले और असंख्य लोगों को सहारा देने वाले वृक्ष का ठूंठ में तब्दील होने की अमानवीय प्रक्रिया को इंगीत करती है। हमारे सामने जो दृश्य साकार होता है वह यह कि दलित समुदाय की लोकोपयोगी भूमिका के बावजूद वह वेदनाओं को, यातनाओं को झेलने को मजबूर कर दिया गया है। यह मजबूरी उन्हें जीवन के अंत तक सहनी है। ऐसा वह समुदाय दुःख - यातना के इस बोझ को ढोते हुए अंतर्बाह्य काँप उठता है। कवि का उद्देश्य एकदम समझ में आता है कि वे इस गुलामी को छोड़ने का संकेत देकर मुक्ति की राह पकड़ने की ओर इशारा करते हैं। मुक्ति तभी संभव है जब परंपराओं को नकारकर, उस सड़ी गली संस्कृति के विरोध में विद्रोह होगा। कवि की ईच्छा है मौजूदा व्यवस्था को समतावादी समाज व्यवस्था में बदलकर सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्रांति के द्वारा नए समतावादी समाज का स्वप्न साकार करना।

ज्योति लांजेवार की कविता दलित स्त्री जीवन के संघर्ष को रेखांकित करने के लिए अनोखे सौंदर्यशास्त्र का गठन करती है। परंपरागत साहित्य धारा ने शोषित-वंचित समूह

की आंतरिक वेदना, उनकी जीवन के प्रति जीजिविषा और विशिष्ट जीवनपद्धति को कभी साहित्य का विषय नहीं बनाया। इसकी अभिव्यक्ति के लिए निश्चित तौर पर अभिजात्य भाषाशैली और काव्यगत मूल्य बदले बिना सृजनात्मकता के धरातल पर वह साकार नहीं हो पाएगी। भाषा सौठव और भाषागत सौदर्य के मूल्यों से कही दूर इस जीवन संदर्भों की व्याप्ति होने से कवयित्री विशेष शब्दावली, भाषा के माध्यम से दलित जीवन की रोजमर्रा की जिंदगी की लड़ाई को इन शब्दबंध में बाँधती हैः

झूलसती धूप में जलते तलवें।
झुले को ममता के साथ बबुल पर टांगे।
तारकोल भरे कनस्तर ढोते।
तुझे देखा मैंने।

दलित स्त्री का झुलसती धूप में बबुल के पेड़ पर अपने बच्चे को झुले में टांगकर सड़क निर्माण के काम में जुट जाना। ममताभरी नजर उस झुले पर टिकाए श्रम की आराधना इनके जीवन की अनिवार्यता है। कवयित्री इस कविता के माध्यम से दलितों के श्रमसाध्य जीवन का एक कोलाज चित्रित करके दलित-श्रमिक समुदाय के प्रति संवेदनशीलता की उम्मीद जगाती हैं। हमारे देश में सामाजिक संरचना जाति आधारित है, जिसकी वजह से दलित समुदाय को सोपानीकृत व्यवस्था में निम्न स्तर पर रखा गया है। विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर यह समूह न केवल गरीबी से जूझता बल्कि अवमानना, उत्पीड़न, तिरस्कार, घृणा को झेलते हुए जीवन बिताने पर मजबूर कर दिया जाता है।

1.8 सारांश

मराठी दलित साहित्य–आंदोलन के आधार स्तंभ तथा दलित साहित्य को दिशा देनेवाले दया पवार और ज्योति लांजेवार की कविताएं डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की वैचारिकी का सृजनात्मक विस्तार है। दलित समाज को वंचित यातनामय जीवन जीने के अभिशाप से कब मुक्ति मिलेगी यह चिंता कवि दया पवार की कविता में अभिव्यक्त हुई है। दलित होने की तकलीफ चिंचडी की तरह ताउम्र चिपकी रहती है, चाहे व्यक्ति कितना ही योग्य, कुशल और शिक्षित हो जाए जाति के उत्पीड़न और निम्नताबोध की यातना घनीभूत होकर उसे कचोटती रहती है। डॉ. आंबेडकर के जाति उन्मूलन के दर्शन को सृजनात्मक अभिव्यक्ति देकर दलित चेतना द्वारा अस्मिताबोध जागृत करने का ही सशक्त प्रयास है।

ज्योति लांजेवार 'माँ' कविता में दलित स्त्री के श्रमसाध्य जीवन की वास्तविकता से न केवल रूबरू करती है उसके कष्टमय जीवन के हर उस पहलू को रेखांकित करती है जिसे नागरिक समुदाय देखकर भी अनजान बने रहने का नाटक करता है। देश के विकास में जिस दलित स्त्री की सहभागीता लगभग सबसे अधिक है उसकी आर्थिक स्थिति में पीढ़ी दर पीढ़ी कोई परिवर्तन नजर नहीं आता। वह हर हालत में परिश्रम के कार्य से परिवार का भरण पोषण करने में सुबह से शाम तक जुटी रहती है। उसके भीतर एक तेजस्वी विचार पनपता रहता है। वंचित, पीड़ित, अभावपूर्ण जीवन में एक दिन जरूर परिवर्तन आएगा। वह और उसके बच्चे पढ़–लिखकर डॉ. आंबेडकर जैसे विद्वान बनेंगे, यह आशा हर दलित माँ के आँखों में जन्म ले चुकी हैं।

इकाई 2 तेलुगु दलित कविता : 'गौरैया' और 'खून का सवाल'

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 तेलुगु दलित कविता की विशेषताएं

2.3 डॉ. चल्लापल्ली स्वरूपारानी का परिचय

2.4 'गौरैया' का पाठावलोकन

- 2.4.1 कविता का अर्थ
- 2.4.2 'गौरैया' की विशेषताएं
- 2.4.3 दलित नारी की चाहत

2.5 एन्ड्लुरी सुधाकर का परिचय

2.6 'खून का सवाल' का पाठावलोकन

- 2.6.1 कविता का अर्थ
- 2.6.2 दलितों के जीवन की त्रासद अभिव्यक्ति
- 2.6.3 दलितों के भविष्य के प्रति दृष्टिकोण

2.7 सारांश

2.0 उद्देश्य

तेलुगु की दलित कविता पर केन्द्रीत इस इकाई में आप तेलुगु दलित कविता की विशेषताओं एवं तेलुगु के प्रसिद्ध दलित कवियित्री चल्लापल्ली स्वरूपारानी की कविता 'गौरैया' तथा कवि एन्ड्लूरी सुधाकर की कविता 'खून का सवाल' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- तेलुगु दलित कविता की विशेषताओं को समझ सकेंगे;
- तेलुगु दलित कविता के विकास क्रम को बता सकेंगे;
- तेलुगु दलित कविता 'गौरैया' और 'खून का सवाल' की व्याख्या कर सकेंगे; और
- कविता का पाठावलोकन करने के पश्चात् उसमें मुखर दलित चेतना के विभिन्न संदर्भों को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

तेलुगु में जाषुवा का काव्य संकलन 'गब्बिलम' (चमगादड़) दलित साहित्य के विकास क्रम की दृष्टि से प्रथम काव्य संकलन है, जिसमें जातिगत पीड़ा व शोषण का विस्तृत चित्रण मिलता है। लेकिन जाषुवा गाँधी जी के हरिजन उत्थान आन्दोलन से प्रभावित थे। उनपर डॉ. आम्बेड़कर और उनके आन्दोलन का प्रभाव बिल्कुल ही दिखाई नहीं देता है। ब्राह्मणवाद पर प्रहार भी उतना तीव्र नहीं है। जाषुवा के बाद आये अन्य कवि जैसे जाला

रंग कवि, कुसुम धर्मन्न नक्का चि वेंकय्या, बोयी बीमन्न, ज्ञानानंद कवि आदि कवियों ने भी जाषुवा की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं किया है। तेलुगु में सी.वी. एक विलक्षण कवि हैं। सी.वी. की कविता में एक तरफ़ फुले और अम्बेडकर की समझ मौजूद है तो दूसरी तरफ़ मार्क्स की वर्ग चेतना का सिद्धांत भी वर्तमान है। सी.वी. की कविता में जाति और वर्ग का एक मेथडॉलजी के सिद्धांत भी वर्तमान है। जाषुवा से लेकर सी.वी.तक तमाम कवि दलित हैं। लेकिन उनकी कविताएँ आज के वैश्विक अर्थ में दलित कविताएँ नहीं हैं क्योंकि उन्होंने अम्बेड़करवाद को न तो एक वैश्विक दृष्टिकोण में स्वीकार किया है और न ही दलितों की मुक्ति के लिए उसे ज़रूरी समझा है। दलित जीवन, संस्कृति और ब्राह्मणवाद के प्रति वे उदासीन ही थे। अतः तेलुगु में दलित कविता का आरंभ 1964 के बाद ही हुआ।

तेलुगु में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति मुख्यतः गीत व कविता के माध्यम से हुई। तेलुगु दलित कविता तेलुगु कविता को प्रभावित करने की स्थिति में पहुँच गयी है। वैसे तो 1984 से पहले ही तेलुगु में दलित कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी। लेकिन 1984 में पहला संकलन 'चिक्कनवुतुन्ना पाटा' छपा है जिसमें दर्जनों दलित कवियों की कविताएँ संकलित की गई हैं। इस संकलन ने तेलुगु कविता के इतिहास में तहलका मचा दिया। हर जिले में इस पुस्तक को लेकर बड़े पैमाने पर चर्चाएं एवं गोष्ठियाँ हुई हैं। अप्रैल 1996 में एक और कविता संकलन 'पदुनेक्किन पाटा' छपा। जिसमें तेलुगु कविता को एक नया मोड़ मिला जिसकी प्रेरणा से दर्जनों युवा कवि प्रकाश में आये हैं। अब तक तेलुगु में प्रकाशित कविता संकलनों के नाम इस प्रकार हैं : चिक्कनवुतुन्न पाटा, निशानि, पंचमवेदम् वेलिवाड, पोलिकट्टे, वोल्लु कडुक्कुन्दाम रंड़ि, गुडेडप्पु, बहुवचनम, तल्लि कोडि हेच्चरिक, पदुनेक्किन पाटा, रच्च बंड, नल्लकलुवा, चण्डाल चाटिंपु, पट्टू मच्च, गुरितप्पिन पद्यम, अग्निश्वास वर्तमान, दलित भारती, पुनादी रायी, पादमुद्रा, पोयेदी एमिले, नेल्लम, ब्लाक वाईस, माल काकी, वेलिमुद्र, अल्पपीडनम, दिन्दू महासमुद्रम, मेमे, मोगि, एंगिलि, फल्वा, निप्पु कणिका, जलजला, एना, चित्तरुवु, कलनेता, नीलि केक, लोया, मादिग चैतन्यम, मादिक्केक, कोत्ता गब्बिलम, मट्टि पलक, विडि आकाशम, रेक्कल गोडुगु, दलितुलकेन उरि.....आदि। यहाँ हमें तेलुगु दलित कविता के प्रमुख कवि एंडलुरी सुधाकर और कवयित्री चल्लापल्ली स्वरूपा रानी की एक-एक कविता का अध्ययन करना है। इन कविताओं के पाठावलोकन से पहले तेलुगु दलित कविता और उसकी विशेषताओं को समझने की कोशिश करते हैं।

2.2 तेलुगु दलित कविता की विशेषताएं

दलित कविता के मूल में आम्बेड़करवाद है। दलित जातियों के विकास के लिए आम्बेड़कर यह सुझाव देते हैं कि आर्थिक दृष्टि से दलित जातियाँ मज़बूत बने। संविधान द्वारा दी गई आरक्षण की सुविधाओं को इसी कार्यक्रम के अंतर्गत समझना चाहिए। आंबेडकर द्वारा प्रतिपादित स्टेट सोशलिज़्म आंबेडकरवाद की मुलभूत स्थापना है। आंबेडकर ने कहा था "पीड़ित जातियों के नेतृत्व वाली सरकार के अधीन उद्योग, जमीन, बैंक और उत्पत्ति से संबंधित अन्य संस्थाएँ हों। आंबेडकर यह मानते थे कि असमानता आधारित समाज में सदियों से आर्थिक सुविधाएँ प्रधान करना जनतंत्र का आदर्श है। आर्थिक नियंत्रण और अस्पृश्यता के बीच के संबंध को स्पट करते हुए आंबेडकर ने कहा है कि "As an economic system permits exploition without obligation. Untouchability is not only a system of unmitigated economic exaploition. "but it also a system of uncontrolled economic exploition."

अतः हमारी व्यवस्था में जाति एक यथार्थ है। समाज के नस-नस में जाति व्याप्त है। यह समझना बहुत ज़रूरी है कि दलित आन्दोलन जाति की ज़डों को काटने के लिए शुरू हुआ

था क्योंकि भारत में किसी भी समस्या के मूल में जाति की ही भूमिका है। यहाँ रुपये के स्वभाव का निर्धारण भी जाति ही करती है। तेलुगु का दलित कवि इसे प्रमाणित करता है। यथा-

सीधी-टेढ़ी गाँठे डाल कर शव को
टिकटी पलंग देने वाला मैं हूँ
शव राख बनने तक कोयला बनने वाला मैं हूँ। तुम
चमगादड़-सा आकर सब उड़ा ले जाओगे। (वेमुल एल्ल्या)

एक शव के दहन के लिए शमशान की देख रेख करने वाले दलित श्रम की तुलना ब्राह्मण के श्रम के साथ करके दलित कवि पूछता है कि दोनों को मिलने वाले श्रम के फल में अंतर क्यों है? दलित कवि के इस सवाल के पीछे जो लाज़िक है, वह स्पट करता है कि आर्थिक समस्या के साथ जाति की समस्या भी जुड़ी हुई है।

उच्च हिन्दू जातियों के द्वारा बनाई गई आर्थिक नीतियाँ आज भी ज़ारी हैं। सरकार द्वारा घोति योजनाएँ और बजट उच्च जातियों के अनुकूल में और निम्न जातियों को संकट के दलदल में धकेलने वाले होते हैं। इसी बात को दलित कवि इस प्रकार कविता में व्यक्त करता हैः

कम्मा के बागों के सरहद
रेडिड़यों के खतों की बाँधे
बनियों के तोल
पार करने वाली बजट योजनाएँ
रँग-बिरंगी क्रातियाँ हैं।
जाति विशेष का नाम हैं। (दुर्गा प्रसाद)

सरकार के नाम पर सरकार के नेतृत्व में घोषित किये जाने वाले सभी कल्याणकारी कार्यक्रमों के पीछे जाति के अंतर्विरोध सक्रिय हैं। यह जानना तभी संभव होगा जब हम आंबेडकर को एक मेथडॉलजी के रूप में स्वीकार करते हैं।

दलित कविता नई आर्थिक नीतियों के पीछे काम करने वाली उच्च जातियों की मानसिकता की भी खबर लेती है। विदेशी पूँजी का स्वागत करना, सार्वजनिक क्षेत्र का शनैः शनैः निजीकरण करना एक षडयंत्र ही है। इस का सीधा प्रभाव दलितों पर पड़ता है। सार्वजनिक क्षेत्र के निजी क्षेत्र के रूप में बदल देने से अब तक निम्न जातियों को दी गई आरक्षण की सुविधाएँ समाप्त हो जायेंगी। विदेशी पूँजी का स्वागत करने का सीधा मतलब यह है कि इस देश की निम्न जातियों की ज़िन्दगी को डालर के लिए गिरवी रखना। तेलुगु का दलित कवि पगडाल नागेन्दर लिखता हैः

उसके सफ़ेद हाथ ने फैला-फैला कर,
मेरे गाँव के खेतों को कस लिया है, फिर भी
कोई कालर पकड़ कर क्यों नहीं पूछता है रे?
हेलिकाप्टर मे कोई आकर बिखेर रहा है रे।
मेरे देह पर पालिथीन थैलियों के बीज
मिट्टी के मनुा होने के पाप के कारण मेरे सूखे
सीने पर क्यों रे इस हथौड़े की चोटें?

इस देश में साम्राज्यवाद के लिए भी जातिगत भेदभाव है। यहाँ साम्राज्यवादियों के तमाम एजेन्टस उच्च जातियों के ही लोग हैं। चाहे वह गॉट का समझौता हो या अमरीका के

समुद्र जल बेचने का समझौता। केवल दलित और छोटे पेशे के लोग ही साम्राज्यवाद के चुंगल में फँस जाते हैं।

इस देश में दलितों की साधन-संपत्ति कुछ है तो वह प्रकृति। प्रकृति में ही दलित अपना भविष्य देखता है। इसी क्रम में समुद्र को ही सर्वस्व मानने वाले कई दलित इस देश में अत्यंत दयनीय ज़िन्दगी जी रहे हैं। तूफ़ान मे सब कुछ खो जाने वाली एक माँ की व्यथा को दलित कवि इस प्रकार शब्दबद्ध करता है-

बप्पा को ढूँढ़ते माँ का दिल
पनडुब्बी जैसा पानी पर तैर गया
गले तक पानी मे भीगे कपड़ों से
और किसी किनारे प्रयाण करते
शायद मुआवज़ा देने के लिए
हम से राहत कार्यकर्ता ने पूछा
खेतीबाड़ी है?
नहीं! समुद्र है कहा माँ ने, भोलेपन से! (एम.वेंकट)

अतः दलित कविता में अर्थ पूरे ययार्थ के साथ चित्रित होता है। मित्र और शत्रु की सही सही पहचान दलित कविता करती है। जो लोग यह आरोप करते हैं कि दलित लेखक जितना महत्व जाति को देते हैं, उतना महत्व आर्थिक समस्या को नहीं, यह गलत धारणा है। वास्तव में दलित लेखक न केवल आर्थिक विमता का जाति के आधार पर वैज्ञानिक विवेचन ही प्रस्तुत करते है बल्कि एक वैज्ञानिक समझ के आधार पर वैकल्पिक आर्थिक व्यवस्था की तलाश भी करते हुए सीधे वर्तमान व्यवस्था से मुठभेड़ करते हैं।

दलितों के द्वारा राजनैतिक दृष्टि से सत्ता हासिल करना ही सही शब्दों में निम्न जातियों की मुक्ति है। दलितों की एकता के आधार पर एक राजनैतिक दल काम करें। निम्न जातियों के प्रति जो भेदभाव बरता जा रहा है, वह भेदभाव तब तक नहीं मिट जाएगा जब तक निम्न जातियों की सरकार नहीं बनती है। इसी दृष्टिकोण के तहत फूले ने शूद्र अतिशूद्र के बीच एकता का प्रतिपादन किया और ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय जातियों पर राजनैतिक जीत हासिल करने की कामना व्यक्त की। आंबेडकर द्वारा प्रतिपादित रिपब्लिकन पार्टी इस दिशा में एक सार्थक पहल है। यह दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि पार्टी का गठन होने से पहले ही उनका निधन हो गया। तमिलनाड़ में पेरियार ने दलितों को राजनैतिक दृष्टि से एक करने की उल्लेखनीय कोशिश की है। कांशीराम के नेतृत्व में गठित बहुजन समाज पार्टी (अनेक शंकाओं के बावज़ूद) के मूल में अम्बेड़कर का संदेश ही है। यह तो भवि ही बताएगा कि निम्न जातियों की राजनैतिक आकांक्षाओं को फलीभूत करने की उनकी यात्रा सफल होगी नहीं। उच्च जाति के लोगों के नेतृत्व में काम करने वाली पार्टीयों को छोड़कर निम्न जातियों के तमाम लोग जब तक एक राजनैतिक लड़ाई मे शिरकत नहीं होंगे तब तक निम्न जातियों की प्रगति और सामाजिक परिवर्तन की कल्पना करना संभव नहीं है। अतः तेलुगु का दलित कवि वर्तमान राजनीति की ज़ड़ों की तलाश करता हुआ पुरी व्यवस्था को ललकारता है।

राजत्व-समय के
राजनैतिक पिशाब-कीचड़ में गीले हुए
ये झण्ड़े
आर्य मुखों से भरे हुए हैं। (दुर्गा प्रसाद)

उच्च जातियों के नेतृत्व वाली तमाम पार्टियों द्वारा चुनाव के समय वोट के लिए जो प्रेम व स्नेह प्रदर्शित किया जाता है वह मात्र ढ़ोंग के सिवा और कुछ नहीं है। सब ढ़ोंग और

ठग है। किसी भी पार्टी के झण्डे उठाने वाले, कार्यकर्ताओं के रूप में काम करने वाले और सब कुछ खोने वाले निम्न जातियों के लोग ही हैं। यह सब जानकर ही तेलुगु का दलित कवि उच्च जाति के राजनेताओं को चुनौती देता हैः

लकड़ी हो आपकी पार्टियों के कटाउट वाले
हमारे बाहु खिलने लगे हैं। (ए. दुर्गा प्रसाद : पुरिविप्पुकोनि)

इस देश में कम्युनिस्ट पार्टियों का एक अलग एवं विशिष्ट इतिहास है। किसान और मज़दूरों को एकत्र करके वर्गहीन समाज की स्थापना के संर्घा में आगे हैं। लेकिन जाति की समस्या का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने में पिछड़ गयी हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी मे मुख्य नेताओं की पंक्ति में कोई दलित दिखाई नहीं देता है। इस संदर्भ मे दलित कविता का यह मानना है कि कोई दलित नेता बन कर पार्टी का नेतृव करेगा तो उच्च जातियों का आधिपत्य समाप्त हो जाएगा। इसलिए वे चाहते हैं कि जाति तोड़ न हो।

तेरे लाल गीता का
मैं ढ़फ़ली बना
मेरे काले गीत से स्वर मिलाने के लिए कहा तो
शंका से तेरा चेहरा फीका पड़ गया
क्या झण्डे के नीचे छिपी जाति के लिए
या मुकुट-सा चमकने वाली सत्ता के लिए।
(पगडाल नागेन्दर : बेटुकु परवशिंचकु)

बहुतों का भ्रम है कि राज्य का मतलब पुलिस है। इस भ्रम को ढ़ाह कर बहुमुखी तरीकों से राज्य के साथ मुठभेड़ें की जा रही हैं। चुण्डूरू में दलित युवक को जला देने वाले राज्य को, शराब विरोधी आन्दोलन के दौरान ठेकेदारों और गुण्ड़ों का पक्ष लेने वाले राज्य को, विशेष कर चलपति, विजयवर्धन राव के संबंध में काले काटे पहने हुए हैंदव से ठक्कर लेने वाले राज्य का जो विरोध किया जा रहा है, उसे राज्य के साथ मुठभेड़ न मसझना, मूर्खता ही होगी।

माफ़ कीजिए साहब कविता तुम्हारी ग़ुलाम नही है
वह सिर तना हल है।
कविता तुम्हारी चाँदनी में लड़की नहीं है।
वह अंधेरे में काला चीता है।
आखिर क्या पते की बा कहूँ
तुझे सुख देने के लिए
मेरी कविता इस देश का संविधान नहीं है (अफ़सर)

भारतीय संविधान के प्रति प्रत्येक नागरिक को विनम्रता के साथ पेश आना चाहिए। पर दलित कवि संविधान के प्रति ही संदेह व्यक्त करता है। इस संदर्भ में संविधानकर्ता अम्बेड़कर का यह कथन याद कर लेना होगा कि "मैं नहीं मानता कि यह संविधनकर्ता अम्बेड़कर का यह कथन याद कर लेना होगा कि"मैं नहीं मानता कि यह संविधान मेरी दलित जाति की मुक्ति में सहयोग देगा"। अतः कहने का मतलब यह है कि सुविधाएँ प्राप्त करने वाले उच्च जातियों के लोगों के साथ साथ राज्य के साथ भी दलित कवि विद्रोह करना चाहता है और वह आकाश के कंठ पर पैर रख कर ललकारने लगता है कि-

जातिहिन देश के लिए

वर्गहीन राज्य के लिए
अस्त्र मेरा धिक्कार है। (मद्यूरी)
एक नए देश के निर्माण का स्वप्न देखता है
मैं प्राण वायु हूँ
मंदिरों के अवशेषों के ऊपर से
एक नया देश बना रहा हूँ।
मेरा सूर्य
समस्त दुनिया को रोशन करने वाले दिन
अत्यंत नज़दीक हैं। (मद्यूरी : रच्चबंड)

दलित कवि निश्चित रूप से अम्बेड़करवादी राजनैनिक चेतना को अपनाकर घोषित करता है:

मेरी यात्रा
काले राज्य की ओर है।
(कत्ति पद्मा राव : अवर्णम)

2.3 डॉ. चल्लापल्ली स्वरूपारानी का परिचय

डॉ.चल्लापल्ली स्वरूपारानी का जन्म सन् 20.04.1970 में गुन्टूर जिले के प्यापर्रू गाँव में हुआ था। निम्न मध्यवर्ग दलित परिवार में पैदा हुई थी। माता-पिता अनपढ़ थे। गाँव के एक दलित लड़की होने के कारण जाति और लिंग के भेदभाव को भोगना पड़ा। अपने परिवार में पाँच लड़कियाँ और एक भाई था, परिवार में भी लिंग भेद दिखाते थे। स्वरूपारानी जी स्वभावतः स्वाभामानी थी, जीवन में बहुत कट-कट झेलना पड़ा था। अभी वे इतिहास और संस्कृति विभाग पोट्टि श्रीरामुलु तेलुगु विश्वविद्यालय श्रीशैलम में अध्यापिका का काम कर रही हैं।

कविता, कहानी, निबंध, तथा सामाजिक मुद्दों पर इनकी कलम चलती है। खास रूप से दलित स्त्री पर होने वाले अत्याचार, अन्याय पर ध्यान देकर रचनाएँ करती हैं। उनका कविता संकलन 'मंकेनु पूवु' है। इसका हिन्दी अनुवाद 'गौरैया' शीर्षक से प्रकाशित है। तेलुगु के दलित कवयित्रियों में चल्लापल्ली स्वरूपा रानी का नाम अत्यन्त आदर पूर्वक लिया जाता है। समाज में नारी की त्रासदी का वर्णन करती हुई कवयित्री ने शोषित दलित नारी की मूक वेदना को व्यक्त किया है। इसी के साथ दलित नारी की चेतनामयी विचारों को भी दर्शाया है, जहाँ पर यह दलित नारी सारे बंधनों को तोड़कर एक स्वतंत्र और उदार व्यक्तिवाली नारी का रूप धारण कर सकें।

2.4 'गौरैया' का पाठावलोकन

चल्लापल्ली स्वरुपारानी रचित 'मंकेनु पुवु' यानी 'गौरैया' दलित नारी की उत्पीड़न की व्यथा को सूचित करने वाली शक्तिशाली कविता है। कवयित्री का कथन है- 'भारत देश में नारी की स्थिति तो दयनीय है ही, लेकिन यहीं नारी अगर दलित हो तो उसकी पीड़ा के सीमा को रेखांकित करना और भी कठिन है।' सदियों से पीड़ित यह दलित नारी अपने अंदर की घनीभूत वेदना की आग से प्रज्वलित हो कर सभ्य समाज को चुनौती दे रही है कि वह अवश्य ही क्रांति करेगी और एक दिन सारे अड़चनों को पार कर स्त्री मुक्ति का नारा लगाएगी।

गौरैया

मैं कंटीली झाड़ियों में फंस कर
तड़पने वाली गौरैया हूँ
किसी भी तरफ हिलूं
कांटे चुभेंगे मुझे ही
ये आज के कांटे नहीं हैं
पीढ़ियों से मेरे इर्द-गिर्द फैलाई
गुलामी की जंजीरे हैं
आगे कुआं पीछे खाई से
हमेशा मेरे इर्द गिर्द
खतरे फुंफकारते रहते हैं
अरे हां, अपनी जिन्दगी को मैंने जिया ही कब?

घर में पुरूषाहंकार एक गाल पर थप्पड़ मारता है
तो गली में वर्णाधिपत्य
दूसरे गाल पर
मजूरी के पैसे लेने खेत गई
तो वहाँ आसामी पसीने के साथ
जब मुझे ही लूटने की ताक में था
मुझे लगा कि मैं बीच बनकर धरती में समा जाऊं

युगों से पढ़ाई से दूर
होस्टल की गोद के करीब होने पर
वहाँ भी
वार्डन की भूखी नज़रें झेल नहीं सकने के कारण
तन को मुट्ठी में लेकर
लगा कि दूर फेंक दू

बचपन में स्कूल में बिन्दी को लेकर
बड़े होने के बाद जाति को लेकर
सबको मेरे बारे में फुसफुसाते देखकर लगा-
मैं जोर से नाक दबालूं
वासना के काम आई मैं
मगर घर की घर की घरनी भी जब बन नहीं सकी मैं
मुझे लगा किसी तालाब में सिर छिपा लूं

चार अक्षर सीखकर
मैं भी रोजगार बनकर
दफ़्तर जाने पर
'रिजर्वेशन केटेगिरी' की फुसफुसाहट सुन नहीं सकी

और लगा मैं अपने कानों में
सीसा डाल लूं

सहन शक्ति के मर जाने पर
घास का तिनका भी शूल बनकर चुभता है
अब मैं और दौड़ नहीं सकती
इन कटों की ज्वाला में जिन्दगी को धोकर
पलाश–सा खिल जाउँगी
अड़चनों के जंगल को पारकर
झरने-सी छलांग लगाऊँगी!!

2.4.1 कविता का अर्थ

चल्लापल्ली स्वरूपारानी 'गौरैया' कविता में एक दलित नारी को दयनीय स्थिति का वर्णन करती है। दलित स्त्री अपने आपको उस गौरये से तुलना करती है जो कंटीली आड़ियों में फंसी हुई तड़पती रहती है। इस प्रकार इस समाज को कांटों से युक्त मानती हुई उसके भीतर कांटों की चुभन के कारण बिलखती नारी की वेदना को दिखाने का प्रयास हुआ है। इस समाज में सदियों से चली आने वाली कुप्रथाओं का शीकार स्त्री ही रही है और दूसरी ओर कामातुर पुरूष समाज से उत्पन्न समस्याओं को भी उसे ही झेलना पड़ता है। दलित नारी की विड़ंबना यह है कि न वह आगे जा रही है न ही पीछे। उसके जीवन में आगे कुआँ है और पीछे खाई। उसका जीना दुर्भर हो गया। फिर दूसरे ही क्षण वह कहती है कि आखिर उसने जिन्दगी को जिया ही कब है? उसकी इच्छाएं ये तो अपने आप दबसी गयी है।

स्त्री की त्रासदी के बारे मे यहाँ दलित स्त्री सोचती है कि अगर वह जीने का आग्रह लेकर आगे जाने का प्रयास करे भी तो पुरूष समाज का अहंकार उसके गाल पर थप्पड़ मार कर उसकी जीने की इच्छा ही दबा देता है। फिर भी मजदूरिन बन कर खेत-खलिहान में काम के लिए जाती है। वहाँ पर भी अग्रजाति के लोगों की काम-तृष्णा की शिकार हो जाती है। तब दलित नारी की इच्छा होती है कि उसी खेती-बाड़ी में बीज बनकर धरती में समाहित हो जाए। समाज के उच्चजातीय नारी की ही यह दशा नहीं है। दलित नारी को इस प्रकार के प्रहार झेलने पड़ते हैं। पढ़ाई पाने निमित्त जब स्त्री हास्टल में रहती है तो वार्ड़न की भूखी नजरों से वह संतप्त हो जाती है। तब उसे अपने आप पर घृणा होने लगता है। अपने ही तन को मिट्टी मं बींच कर अलग फेंकने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। बचपन से ही बाह्य सुन्दरता को लेकर या जाति-गत भेद-भाव के कारण समाज में वह दूसरों की काना-फूसी का विाय बनने के लिए विवश हो जाती है विवशताबश तालाब में अपने आपको छिपाने की इच्छा उस नारी में प्रकट हो जाती है।

इतनी समस्याओं के बाद कुछ नारियाँ पढ़ लिखकर दफ़्तर में नौकरी करने लगती है तो वहाँ उसकी विद्वत्ता पर ही प्रश्न चिह्न लगाकर उसकी उलाहना दिया जाता है। कहा जाता है कि 'अरे यह स्त्री तो रिजर्वेशन कोटा के अंतर्गत नौकरी हासिल की है।' तब उस शिक्षित स्त्री को इतना दुःख होता है कि वह सोचती है कि उसके कानों में सीसा ड़ालकर सदा बहरी बनकर जीवन यापन करने के लिए बाध्य किया जा रहा है।

दलित स्त्री सोचती है, दुःख सहने की भी एक सीमा होती है। कभी कभी घास का तिनका भी थूल कर चुभती है। और यह नारी सोचती है उससे और दौड़ा नहीं जायेगा। जितने भी उसने दुःख सह, जिन्होंने दिये उनकी ज्वाला में अपनी जिन्दगी धो लेना चाहती है'

और पलास सा खिलकर जीवंत रहने की इच्छा व्यक्त करती है। जितनी दिक्कतें उसकी जिन्दगी में आई हैं, उन्हें पारकर एक झरना समान छलांग मारकर इन समस्याओं को, जंगल को पारकर स्वतंत्र जीवन यापन करने की कामना करती हैं। इसे 'गौरैया' के द्वारा कवयित्री ने स्वर दिया है।

2.4.2 'गौरैया' की विशेषताएं

इस कविता मे दलित नारी पर होने वाले दोहरे शोषण को रेखांकित करने का प्रयास कवियित्री ने किया है। इस संसार मे नारी बनकर जीना ही बड़ी विड़ंबना है। सदियों से परंपरागत ज़ंज़ीरों में जकड़ कर चली आ रही है। कवियित्री कहती है-

"ये आज के कांटे नहीं हैं
पीढ़ियों से मेरे इर्द-गिर्द फैलाई
गुलामी की ज़ंज़ीरे हैं।"

अपने जीवन की विवशता में सोचती है आगे जाने से भी खतरा है और पीछे मुड़ने की भी खतरा है। क्योंकि उसके चारों ओर इतनी समस्याएं निरंतर फुफकारते हुए उसे जीने नहीं देती है। कवियित्री दलित नारी के मन की घनीभूत पीड़ा को इस वाक्य के द्वारा व्यक्त करती हैं,

अरे हां अपनी जिन्दगी को मैंने जिया ही कब?"

यहाँ नारी जीवित है लेकिन प्राणविहीन व्यक्ति ही बन कर जीती आ रही है। घर-बाहर उस पर कई वार होते हैं एक ओर पुरूष का अहकार तो बाहर जातिगत वैषम्य। इतनी त्रासदियों के बीच भी उसके नारीत्व पर अत्याचार से ही उच्च कुल के कामातुर पुरूष करते हैं। नारी अपने को नारी सोचकर अपने पर खीज उठती है। शिक्षित या अशिक्षित नारी इस समाज में कामातुर पुरूषों के वार से विचलित हो चुकी है।

स्वतंत्रता के पश्चात् दलित लोगों के उद्धार निमित्त कई सुख-सुविधाएँ दी गयी हैं, दलित स्त्री अपने ही बल पर भले ही शिक्षित समुदाय मे काम करने में जुट जाते तो रिजर्वेशन का धब्बा उस पर लगाकर उसके आत्म विकास को ही ठेस पहुँचाने में यह समाज पीछे नहीं हटता है।

2.4.3 दलित नारी की चाहत

अभिशप्त जिन्दगी को ढ़ोती थकी-माँदी नारी के भी एक विद्रोह जाग उठा है। कवयित्री कहती है सहनशीलता की भी सीमा होती है उसे पार करने बाद "घास का तिनका भी शूल बनकर चुभता है।' आज की नारी सोचती है, दोड़ने रहने पर, समाज भी उसका पीछा करने उसे दौड़ना ही रहेगा। जब तक खड़े होकर समस्याओं का सामना नहीं किया जायेगा। तब तक समस्यायें उसे भगाते ही रहेंगे, इस कारण इस विद्रोह की जवाला में अपना जीवन तप्त कर उस जीवन को धो डालना चाहती है। अपने अंदर की हीन - भावना को मिटाकर सिर उठाकर चलना चाहती है। फिर एक पलारू-सा खिलकर चमकना चाहती है। इस समाज में अड़चन रूपी जंगल को पारकर उस स्वस्थ समाज में झरने के समान छलांग मारकर स्वस्थ जीवन बिताना चाहती है।

2.5 एन्डलुरी सुधाकर का परिचय

तेलुगु दलित कविता के शीर्षस्थ कवि एवं चिंतक एन्ड्लूरी सुधाकर का जन्म आन्ध्र प्रदेश के निजामाबाद जिले के पामुल बस्ती में सन् 21 जनवरी 1949 को हुआ है। उनके पिता

का नाम देवय्या और माता का नाम शांताबाई है। हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद उच्च शिक्षा के लिए हैदराबाद गये। हैदराबाद शहर में ही उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उस्मानिया विश्वविद्यालय से उन्होंने तेलुगु साहित्य में एम.ए. एवं एम.फिल की उपाधियाँ हासिल की। और जाषुवा के साहित्यिक चिंतन पर शोध प्रस्तुत कर तेलुगु विश्वविद्यालय से पी.एचडी की उपाधि प्राप्त की। वास्तव में सुधाकर तेलुगु की दलित कविता को गति एवं दिशा देने वाले महत्वपूर्ण कवि हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं-

1. कोत्तागबिलम (लंबी कविता), 2. वर्तमानम (कविता संग्रह), 3. मल्ले मोग्गलागोडुगु, 4. अर्थमकतममादिगा की आत्मकथा), 5. ना पुस्तक में ना आयुधम् (मेरी पुस्तक ही मेरा आयुध है), 6. नल्ल दृक्षा पंतरी, 7. वर्गीकरणम् (लंबी कविता), 8. अनुवाद कार्य - शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशा' का तेलुगु में अनुवाद।

2.6 'खून का सवाल' का पाठावलोकन

तेलुगु के दलित कावियों में एन्ड्लरी सुधाकर जी का नाम शीर्षस्थ है। दलितों के जीवन संबंधी विषयों को तर्कयुक्त प्रस्तुत करते हुए उनकी निराशाओं में से उपजे हुए विद्रोह को अंकित करना कवि का उद्देश्य है। इस विद्रोह में भी दलितों के जीवन का उत्थान ही कवि का लक्ष्य है। उच्च जाति द्वारा दलित पर किये गये अत्याचार एवं शोषण के प्रति वह अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं। सर्वमानव की समानता के सुर से दलितों को अलग करने वाले तत्वों की खोज करते हुए सच्चाई को निर्भीकता पूर्वक समाज के सामने रखने का प्रयास करने वाले एन्ड्लरी सुधाकर तेलुगु दलित कविता के विकासक्रम पर अमिट छाप छोड़ने वाले महत्वपूर्ण कवि हैं।

खून का सवाल

मैं अभी भी निषेधित मानव हूँ
सांस मेरी बहिष्कृत है
मेरी काटि को ताड़ के पत्तों से लपेट कर
मेरे मुंह पर उलगदान लटका कर
लोगों के बीच मुझे
असह्य मानव - पशु बनाने वाले मनु ने
जब मेरे काले माथे पर जबरदस्ती से
निषेध का ठप्पा लगाया था
तभी मेरी समस्त जाति की
शनैः शनैः हत्या कर दी गई
अब नया क्या मरना?
यदि हमारी रहस्यमय मौतों को लिखा जाय
तो हमारी हत्याएं ही पत्रिकाओं की
सनसनीखेज सुर्खियाँ बनेगी
इस देश में कहीं भी खोद कर देखा जाय
तो हमारे कंकाल मिट्टी के कंठ से दिखेंगे

वेद सुने जाने पर मेरे कानों में जब सीसा भर दिया गया था
जब कोई भाषा बोलने पर मेरी ज़ुबान काटली गई थी

किसी की काम वासना को शमित करने पर
जब मेरा सिर काट लिया गया था
पेड़ से बाँध कर पशु-सा मुझे जब मारा गया था
मैं तभी लाश बन गया था
पर हमारी लाशें कोई खबर नहीं बन सकीं
शास्त्रों के नाम बदल गये हैं
अंकों की समस्याएं बदल गई हैं
सिर्फ़ हमारी हत्याएं ही नहीं बदली हैं
अब हमारी लाशें कोई सनसनीखेज खबर नहीं हैं हमारे लिए

नई नहीं हैं लाशों पर हत्यारों की सहानुभूति
नए नहीं हैं जुलूसों में राजनीतिक दलों के आँसू
कल के इतिहास ने केवल अंगेठा ही काटा था
वर्तमान तो पाँचों उंगलियां काट रहा है

सरेआम गुप्त रूप से
घट-सर्प हमारी छायाओं का
पीछा कर रहा है
श्रृंखलाओं में सीधा खड़ा/दृश्य
बीसवी शताब्दि के लिए भी खून का सवाल ही है
उगी हमारी छाती की ओर बढ़ता आ रहा है खण्ड़ा

संविधान लिखने की विरासत में
मिल रहे हैं-जेल
श्रृंखलाएं मरण के पुरस्कार
हमारे बीच के व्यर्थ पौधे
हमारी लाशें कोई खबर नहीं बन सकीं
शास्त्रों के नाम बदल गये हैं
अंकों की समस्याएं बदल गई हैं
सिर्फ़ हमारी हत्याएं ही नहीं बदली हैं
अब हमारी लाशें कोई सनसनीखेज खबर नहीं हैं हमारे लिए

नई नहीं हैं लाशों पर हत्यारों की सहानुभूति
नए नहीं हैं जुलूसों में राजनीतिक दलों के आँसू
कल के इतिहास ने केवल अंगूठा ही काटा था
वर्तमान तो पाँचों उंगलियां काट रहा है

सरेआम गुप्त रूप से
घट-सर्प हमारी छायाओं के
पीछा कर रहा है
श्रृंखलाओं में सीधा खड़ा/दृश्य

बीसवी शताब्दि के लिए भी खून का सवाल ही है
उगी हमारी छाती की ओर बढ़ता आ रहा है खण्ड़ा

संविधान लिखने की विरासत में
मिल रहे हैं-जेल
श्रृंखलाएं मरण के पुरस्कार
हमारे बीच के व्यर्थ पौधे
हमारी हरित सांस को दबा रहे हैं
हमारी मृत्यु का भी मूल्य निर्धारित किया जा रहा है

अब हमें खून की रकम नहीं चाहिए
हमें चाहिए हमारी चाह व्यक्त करने वाला निर्भीक कंठ
नया संविधान
नया देश
नई धरती
नया आगाश!!

2.6.1 कविता का अर्थ

प्रस्तुत कविता में कवि दलित वर्ग के एक व्यक्ति को व्यथा बयान करते हैं। सभ्यसमाज में भी अपने आप को निषेधित व्यक्ति के रूप में देखने जाने वाले समाज को देख आक्रोश व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं मैं निषेधित मानव हूँ, मेरी सांस बहिष्कृत है। वे आगे कहते हैं' उसकी जिन्दगी का ताड़ के पेड़ से ही बांध कर रख दिया गया है' इस प्रकार दलितों को असहनीय जिन्दगी जीने के लिए विवश करने वाले मनुस्मृति एवं शास्त्रों के प्रति वे धिक्कार की भावना जताते हैं। उनका कहना है मनु के कारण ही उस के काले माथे पर निषेध का ठप्पा लगाया गया था। जिस दिन मनुस्मृति का महत्व बढ़ा है, उस समय से ही दलितों की हत्या धीरे-धीरे होती गयी है। आगे दुःख भरे स्वर में वे व्यक्त करते हैं कि उसे बहुत पहले ही मार दिया गया है। अब नये सिरे से मरने के लिए बचा ही क्या है? इसलिए वे समाज के सामने चुनौती देते हुए कहते हैं कि न जाने हमारी जाति की कितनी रहस्यमयी मौतें हुई हैं। अगर आज भी इस भारत की धरती को कही भी खोद कर देखा जाए तो न जाने दलितों की कितनी कंकाले बाहर आयेगी। इन तथ्यों को समाज के सामने रखा जाए तो ये सभी तथ्य सनसनी खबरे बन कर पत्र पत्रिकाओं में छप जायेंगे। इस देश में दलितों पर किये गये दमन का उल्लेख करते हुए कवि का स्पष्ट मंतव्य है, कि इस देश में दलितों के लिए वेद सुनने का या उच्च लोगों की भाषा बोलने का या उच्चारण तक करने का अधिकार नहीं है। वेद की बातें सुनने लगे तो कान सीसे से भर देंगे और उनकी भाषा बोले तो ज़बान काट देंगे। सब दलितों के अस्तित्व और मस्तिक पर वार करेंगे ताकि सुन न सके, बोल न सके। लेकिन उच्च जाति के लोगों की कामातुर दृष्टि के लिए मेरी जाति थी। मेरा अछूतापन आड़े नहीं आता हैं। अगर इस काम में वे पकड़े जाए तो मौत उनकी नहीं दलितों को ही दी जायेंगी।

कवि कहते हैं समाज में सब वियों में परिवर्तन जारी हैं। अगर कहीं बदलाव नहीं दिखाई ही दे रहा है तो वह केवल दलितों की त्रासदी से भरी हुई जिन्दगियाँ हैं। अब कवि का कहना है कि इस प्रकार सदियों से इन अत्याचारों को सहते हुए वे इतने निस्तेज हो गये हैं कि अगर इन्हें अपने लोगों की मौत की खबर भी मिल जाए तो उनका दिल स्पन्दित नहीं होगा।

कवि इतिहास के आधार पर यह साबित करना चाहते हैं कि सदियों से उच्चजाति का रवैय्या दलितों के प्रति घृणा का रहा है। समय के साथ समाज सुधारकों के कारण दलितों की जिन्दगी सुधारने के प्रयास जारी है। फलस्वरूप कुछ नेता गण अपने आपको मानवतावादी दिखाने के लिए, दलितों के उद्धार हेतु जुलूस निकालने का या भााण देने का ढ़ोंग रच रहे हैं। अपना नाम कमाने के लिए, दलितों पर एहसान करते हुए ये लोग समाज को गुमराह कर रहे हैं। कवि कहते हैं- महाभारत में एकलव्य की एकाग्रता को देख, गुरु दक्षिणा के रूप में उसी का अंग़ूठा माँग कर उसकी शक्ति को परास्त कर चुकें है। लेकिन आज की परिस्थिति तो और भी बदत्तर हो गयी है। आज तो दलितों की शक्ति संपूर्णतः नाश करने निमित्त पाँचों उंगलियाँ कटवाने की साजिशे चल रही है।

कवि दलितों के अनुभव को आवाज देते हुए कहते हैं कि दलितों पर गुप्त रूप से वार हो रहे हैं ताकि उनकी एकता भंग हो जाए। बीसवीं शती में आज यह मुद्दा 'खून का सवाल' हो कर सामने प्रकट हो रहा है।

अगर कोई भी व्यक्ति दलितों के उद्धार की बात करता है या संविधान में कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास करते है तो उन्हें मृत्यु रूप मे पुरस्कार दिये जा रहे हैं। जिसके कारण चारों ओर की हरियाली मिटती जा रही है। आज उच्च जाति के लोग दलितों की मृत्यु के लिए मूल्य भी निर्धारित करने लगे हैं। मानो दलितों की हस्ती ही उनका अंतिम लक्ष्य है।

कवि अंत में दलितों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अब दलितों को अपनी अस्मिता बनाए रखने के लिए खून के मूल्य की ज़रूरत नहीं है। वे केवल अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चाह रखते है, इसके लिए उनकी आवाज को बुलन्द करने निमित्त निर्भीक कंट की आवाज चाहते हैं। जिसके कारण वे नये संविधान को पा सकें, नयी धरती में निवास कर सकें, नये आकाश के नीचे स्वतंत्र हो कर ही सकें।

2.6.2 दलितों के जीवन की त्रासद अभिव्यक्ति

प्रस्तुत कविता 'खून का सवाल' में दलितों की एक ऐसी त्रासदी की गाथा की अभिव्यक्ति है, जिसे पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति स्पन्दित हो सकें। उच्चजातियों के अत्याचारों पर कवि का आक्रोश कविता की हर पंक्ति में व्यक्त होता है।

'मैं अब भी निषेधित मानव हूँ
साँस मेरी बहिष्कृत है'

उनकी वेदना यहाँ और भी घनीभूत हो कर व्यक्त होती है

'इस देश में कहीं भी खोज कर देखा जाए
तो हमारे कंकाल मिट्टी के कंठ से दिखेंगे।'

उनकी पीड़ा है कि शास्त्र सुनने पर, उनकी बोली बोलने पर भी उन्हें ऐसे दंड़ दिए जाते हैं फिर वे सदा के लिए जिन्दा लाश हो कर रह जाते हैं।

'वेद सुने जाने पर मेरे कानों में जब सीसा भर दिया गया था
जब कोई भाषा बोलने पर मेरी ज़ुबान काट ली गयी थी'

इन वाक्यों में दलितों पर किये गये अत्याचारों का इतिहास व त्रासद घटनाएँ व्यक्त होती हैं। इतना होने पर भी इन अत्याचारों के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठा पा रहे हैं। समाज का ही जीता जागता प्राणी, समाज में तहते हुए अपने पंचेन्द्रियों को बन्द कर लाश की

तरह जीने के लिए विवश हो रहा है। समय के साथ कई परिवर्तन हो चुकें हैं और हो रहे हैं लेकिन दलितों की जीवनी में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। लेकिन ऊपरी दिखावे से लोगों को बहकावे में लाने का प्रयास हो रहा है कि तत्कालीन समय में दलितों का उद्धार हो रहा है। वास्तविक स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है उसका चित्रण कवि ने यों किया है-

'नई नहीं है लाशों पर अत्याचारों की सहानुभूति
नए नहीं है जुलूसों में राजनीतिज्ञ दलों के आँसू
कल के इतिहास ने केवल अंगूठा ही काटा था
वर्तमान तो पाँचों अँगुलियों काट रहा है।'

इस प्रकार इस कविता में दलितों की मौन पीड़ा सर्वत्र दिखाई देती है।

2.6.3 दलितों के भविष्य के प्रति दृष्टिकोण

इस कविता में दलितों की अभिव्यक्ति के पश्चात् उक्त विषय का विश्लेषण करते हुए कवि, दलित समाज की आवाज बन उसके फ़ैसले को सुनाते हुए कहते हैं कि अब दलितों के लिए खून के मूल्य की ज़रूरत नहीं है, अब वे केवल अपनी अस्मिता को बनाए रखने की चाह मात्र रखते हैं। वे अस्मिता को बनाए रखने के लिए और उनकी आवाज को स्पष्ट रूप से सुनाने के लिए एक गंभीर कट और स्पष्ट आवाज की ज़रुरत है जो आवाज़ संपूर्ण समाज में गूँज सकें।

जैसे कवि के शब्द है-

'अब हमें खून की रकम नहीं चाहिए
हमें चाहिए हमारी चाह व्यक्त करने वाला
निर्भीक कंठ
नया संविधान
नया देश
नई धरती
नया आकाश!!'

2.7 सारांश

कवयित्री चल्लापल्ली स्वरूपारानी की' 'गौरैया' कविता में जाति लिंग और वर्ग दमन के विरोध में शक्तिशाली अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। दलित नारी के दोहरे शोषण के साथ, समाज में पुरूष अहंकार की शिकार होने वाली दलित नारी के चित्रण को भी इस कविता में व्यक्त किया गया है। कवियित्री ने अतीत के संदर्भ को वर्तमान से जोड़कर ऐतिहासिक बोध के साथ साथ तर्क के आधार पर अनेकानेक पहलुओं की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, नई सोच को चित्रित करने का प्रयास किया है। इस कविता मे कवियित्री की सोच है कि गाँवों की नारी अधिकारहीन भी है और अधीन भी, अशिक्षित है, इस कारण वह दुनियादारी से वंचित भी है। इसी कारण अशिक्षित दलित स्त्री अवहेलना, अपमान और उत्पीड़न को चुपचाप सहने के लिए बाध्य हो रही है। विरोध के रूप में अपमानित ज्वाला से अंदर झुलसती जाती है। कवयित्री ने समाज के उत्पीड़क वर्गों द्वारा दलित वर्ग की स्त्रियों के यौन-शोषण का मुद्दा उठाया है। इस यौन-शोषण का शिकार शिक्षित एवं अशिक्षित दलित नारी एक ही साथ हो रही है। वे अब इन तमाम जटिलताओं से उभरना चाहती है। दलित नारी जीने की आकांक्षा लेकर अपने को शक्तिशाली बनाना चाहती है। वह क्रांति लाना चाहती है। इसी तरह निम्न वर्ग की शोषित हो जाने वाली दलित नारी भी आत्मविश्वास

के साथ संघर्षरत् होना चाहती है। इसी आस के साथ कवियित्री न इस कविता की रचना की है।

एंडलुरी सुधाकर 'खून का सवाल' कविता में दलितों की मौन पीड़ा को व्यक्त करते हैं। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में वे अपने तत्कालीन समय की वेदना की तुलना करते हुए चिंता व्यक्ति करते हैं कि उनकी स्थिति दिन-ब-दिन कैसी धरती जा रही है। सभ्य समाज में आजकल विकास की बाते हो रही हैं, वैश्वीकरण में देश की प्रगति के विचार विकसित होते जा रहे हैं, फिर भी दलितों की स्थिति में कहीं भी विकास की रेखाएं दिखाई नहीं दे रही हैं। दलितों की इस स्थिति को स्वस्थ बनाने की दिशा में वे ऐसे समाज को चाहते हैं जहाँ दलितों की आवाज मुखरित हो कर समाज में गूँजे। इस पुकार को सुन एक नया संविधान रचा जाए, जिस संविधान के तदनुसार नया देश, नई धरती, नया आकाश हो। जहाँ दलित पूर्ण मानव बनकर, स्वेच्छायुक्त जीवन व्यतीत कर सकें। इस उदान्त तथ्य को कवि ने अत्यन्त सहज शैली के साथ सरल भाषा में व्यक्त किया है।

इकाई 3 पंजाबी दलित कविता : 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य'

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मदन वीरा : जीवन और रचना कर्म

3.3 'घोड़ा' कविता का पाठावलोकन

- 3.3.1 मूल संवेदना और स्वरूप
- 3.3.2 सामाजिक गुलामी का रूपक
- 3.3.3 मानवीय गरिमा की आकांक्षा
- 3.3.4 भाषा और शिल्प

3.4 द्वारका भारती : जीवन और रचना कर्म

3.5 'आज का एकलव्य' कविता का पाठावलोकन

- 3.5.1 मूल संवेदना और विषय वस्तु
- 3.5.2 मिथक और आधुनिकता
- 3.5.3 भाषा और शिल्प

3.6 सारांश

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप प्रसिद्ध पंजाबी दलित कवि मदन वीरा की कविता 'घोड़ा' और द्वारका भारती की कविता 'आज का एकलव्य' का अध्ययन करेंगे। ये कविताए हमारे सामाजिक जीवन की विडम्बना को उजागर करती हैं। हमारे समाज में सदियों से एक विशाल जनसमूह को मानवीयता का दर्जा मयस्सर नहीं है। भारत में बौद्विक तबका अपने आध्यात्मिक चिंतन की गहराई और उसकी ऊँचाई की चर्चा करते हुए नहीं थकता। लेकिन इसी देश में सामाजिक व्यवहार में हृदय विदारक भेदभाव का बर्ताव होता चला आ रहा है। इस भेदभाव का मूल कारण जाति प्रथा है। इस जाति प्रथा पर विचार विश्लेषण से बौद्धिक वर्ग दूर रहता है। इस उपेक्षा का भी अभिप्राय है वास्तविकता पर पर्दा पड़ा रहे, व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता नहीं दिखे और यथास्थिति कायम रहे। लेकिन पंजाबी दलित कविताएँ 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' इस यथास्थिति के विरोध में है। यह कविताएँ उन दशाओं की ओर संकेत करती हैं जिसमें एक समूचे समाज की मानवीय गरिमा का अपहरण किया गया है। यह अवधारणा मात्र वैचारिक बनावट नहीं है बल्कि हमारे समाज की हकीकत है। इतिहास में कुछ अस्पृश्य जातियों को अपनी कमर के पीछे झाड़ू बाँध कर चलना पड़ता था। उनके पैर धरती पर पड़ने से जो अशुद्वता आ जाती है, उसे साफ कर हटाते जाने के लिए, यह रिवाज, यह परंपरा प्रचलित की गई थी। इसको जायज ठहराने वाला दर्शन एक मनुष्य को उसकी मानवीय गरिमा से वंचित कर देता है। मदन वीरा की कविता 'घोड़ा' दलित समाज की मानवीयता का अपहरण कर उसे पशु के रूप में घोड़ा बना देने की साजिश के खिलाफ खड़ी है। दूसरी कविता

'आज का एकलव्य' उन तमाम परंपराओं के सामने चुनौती प्रस्तुत करती है जो दलितों से उनकी प्रतिभा, रचनात्मकता और चेतना के अपहरण को जायज ठहराती हैं। अब दलित किसी को गुरू, भगवान अथवा मसीहा के नाम पर अपना सर्वस्व अर्पण करने की भावुकता लिए प्रस्तुत नहीं है। अब दलित समाज अपने गुरू, अपने मसीहा और अपने भगवान की पहचान और आस्था के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ रहा है। अब किसी द्रोणाचार्य को अगूंठा नहीं मिलने वाला, अगर उन्होंने ज्यादा जोर दिया तो प्रतिरोध को झेलना पड़ सकता है।

इन कविताओं में केवल विरोध की भावना नहीं है बल्कि सर्जना की चेतना है। इनमें एक ऐसे समाज के निर्माण की आकांक्षा भी है जिसमें एक व्यक्ति को व्यक्ति की गरिमा के साथ जीवन की आजादी हासिल हो। एक ओर विध्वंस का भाव है तो दूसरी ओर निर्माण का स्वप्न भी है। इसलिए ये कविताएँ विरोध मात्र से आगे जाकर दलित चेतना की कविताएँ है। इन कविताओं के माध्यम से हम पंजाब के दलित जीवन की वेदना और आकांक्षा दोनों की पहचान कर सकेगें। पंजाब भारत का एकमात्र प्रांत है जहाँ दलित समाज कुल आबादी का लगभग एक तिहाई हिस्सा है। ऐसे में संख्या के बल ने यहाँ के दलित जीवन में कितना फर्क पैदा किया है ? इन कविताओं के अध्ययन से पंजाबी दलित चेतना को उसकी संपूर्णता में जानने का प्रयत्न किया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- पंजाबी समाज में अधिकार सत्ता और दलित सरोकार को जान पाएंगे;
- पंजाबी समाज में दलित चेतना के उद्‌भव सूत्रों को पहचान पाएंगे;
- पंजाबी दलित कविता की विशिष्टता को रेखांकित कर सकेंगे; और
- पंजाबी दलित कविता के शिल्प और भाषा की परख कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में पंजाब की एक सीमांत प्रांत की स्थिति रही है। निरंतर विदेशी लोगों, आंदोलनों और संस्कृतियों के लिए यह प्रांत किसी द्वार के समान था। आरंभिक प्राच्य विद्वानों ने पंजाब के सांस्कृतिक – सामाजिक धरातल का अध्ययन आरंभ किया । उन्होंने यह पाया कि शेष भारत में सामाजिक गठन की आधारभूत वर्ण व्यवस्था यहाँ पर अपने प्रचलित चार वर्णों के ढाँचे के साथ मौजूद नहीं थी और न ही ब्राह्मण की समाज में प्रभुता का कोई सशक्त चलन था। लेकिन इसके बावजूद जाति संस्था अपने आक्रामक रूप में विद्यमान थी। यह विरोधाभास एक ऐतिहासिक व्याख्या की माँग करता है। इस व्याख्या में ही पंजाबी दलित कविता के उद्‌भव के बीज उपस्थित हैं। निर्गुण भक्ति ने महाराष्ट्र की तरह पंजाब में नई सामाजिक उर्जा को जन्म दिया । इस उर्जा के कारण पहले से पिछड़े और उपेक्षित समूहों ने क्षेत्र में पहली बार राजनैतिक सत्ता कायम की । शिवाजी ने कुनबी, धनगर, मावलों और कोली जैसे समूहों के साथ मराठा साम्राज्य कायम किया, तो सिख गुरूओं ने निम्न जातियों के साथ पंजाब में सिख साम्राज्य की स्थापना की। सिख गुरूओं ने सामाजिक गठन में जाति की दीवार को बहुत महत्व नहीं दिया । फलतः दलित जातियों के लिए उनके कई कदम सकारात्मक बदलाव ले कर आए ।

- जाति को भक्ति के लिए आवश्यक मानने से इंकार ।
- लंगर, कराह प्रसाद और पंगत जैसे धार्मिक व्यवहार में जाति हैसियत का पालन नहीं।

- अमृत चखाने और पंच तत्व–केश, कडा, कच्छ, कृपाण, कंघी का उपयोग तथा शुद्वि के अनुष्ठान।
- खालसा भाईचारा में जाति पर बल नहीं । पहली बार शूद्रो और अछूतों को गुरू ग्रंथ के रूप में एक शास्त्र और रक्षा के लिए शस्त्र धारण का अधिकार और कबीर, रैदास और शेख फरीद के वचन को पवित्र गुरू ग्रंथ साहब में स्थान।

इन समतापरक उपायों से अछूत मानी गई जातियों को उत्थान का अवसर मिला। इसी काल में पहले दलित कवि भाई जटिया अथवा जीवन सिंह (1655–1705) का उदय हुआ। वे गुरू घराने के बहुत विश्वास पात्र थे। उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा कर गुरू तेग बहादुर का कटा हुआ सिर पंजाब तक पहुंचाया था। उनके इस कदम पर ही कहा गया– 'रंग्ररेटे गुरू ते बेटे' अर्थात अछूत भी गुरू के बेटों के बराबर है। कवि जटिया ने श्री गुरू कथा नाम की लम्बी कविता की रचना की जिसमें समकालीन घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। इस काल के दूसरे महत्वपूर्ण दलित कवि साधु वजीर सिंह (1790–1859) रहे, जिन्होंने 'ब्रह्मग्यानी' का दर्जा हासिल किया। उन्होंने ब्रजभाषा और पंजाबी दोनो भाषाओं में रचनाएँ की। अपनी वाणी में उन्होंने सभी धर्मों की रूढ़ियों पर प्रश्न खड़े किए और जीवन में कथनी –करनी की एकता पर बल दिया। उनके वचन 'शिहार्फियाँ साधु वजीर सिंह ' नामक संग्रह में हैं। इसी श्रृंखला को ग्यानी दित्त सिंह (1852–1901) और साधु दया सिंह आरिफ (1894–1946) ने आगे बढ़ाया। दित्त सिंह ने सिंह सभा आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने 1887 में आंदोलन के अखबार 'खालसा अखबार का संपादन किया। उन्होंने पचास से अधिक पुस्तकों का लेखन किया। जिसमें लोक प्रेम की भावना से लेकर नैतिकता के चिंतन तक व्यापक विषयों को समेटा गया। साधु दया सिंह आरिफ (1894–1946) पहले पंजाबी दलित कवि हैं, जिन्होंने जनमानस के बीच अपार लोकप्रियता दर्ज की। उन्होने स्वअध्ययन से उर्दू, गुरूमुखी, फारसी और संस्कृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनकी पहली रचना 'फनाह दर मकान' ने धर्म और नैतिकता के सवालों पर गंभीरता से विचार किया । उनकी अगली रचना 'जिन्दगी विलास' ने पंजाबी मानस के भीतर उनकी जगह को अमर बना दिया। वारिस शाह की 'हीर' के बाद पंजाब में लोकप्रियता के पैमाने पर वह दूसरी कृति बन गई। अपनी कविताओं में आरिफ ने मूर्तिपूजा और ब्राह्मचार का खण्डन किया तथा सभी धर्मों के सार तत्व की समानता पर बल दिया। सिख धर्म के निर्माण काल में दलित समाज ने इसके लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया बदले में इस आंदोलन ने ब्राह्मणवादी मान्यताओं से अलग उनमें आत्मविश्वास और अधिकार का संचार किया।

लेकिन अगला चरण राजनैतिक सत्ता की स्थापना का था। इस चरण में कई महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं –

1. गुरू प्रथा बंद हुईं। छठवें गुरू के समय शूद्र वर्ण के खेतिहर जाटों ने भारी संख्या में सिख धर्म को अपनाया। सामान्यत; शोषित आदमी अपने शोषक का विरोध करते हुए भी उसकी आदतों को आत्मसात कर लेता है। शूद्र जाटों ने सत्ता प्राप्त होते ही अपने पुराने मालिकों की तरह व्यवहार आरंभ कर दिया।
2. खत्री गुरूओं के स्थान पर जाट समूह का सिख धर्म में प्रभाव बढ़ गया। उन्होंने महाराजा रंजीत सिंह के नेतृत्व में सिख साम्राज्य की स्थापना की।
3. साम्राज्य स्थापना के साथ ही ब्राह्मणवादी भेदपरक मूल्यों की पुनः वापसी हुई। रंजीत सिंह के काल में 12 मिस्लों की स्थापना जाति के आधार पर हुई। बेदी, सिद्धू और सोधी जैसे आभिजात्यों का उदय हुआ।

4. 1857 की बगावत के बाद अंग्रेजी सत्ता ने परंपरागत आभिजात्य के रूप में उँची जातियों के साथ सुलह और उनके प्रोत्साहन की नीति अपनाई। मार्शल रेस जैसी अवधारणाओं का विकास किया। जबकि बगावत के दमन में अंग्रेजी सेना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले दलित महजबी सिखों की भारी संख्या में तेजी से कटौती की गई।

5. दलितों के साथ भेदभाव मे पुनः बढ़ोत्तरी

6. खेती की भूमि पर खेतिहर शूद्र जातियों की प्रभुता को मान्यता। नहर कालोनियों के विकास के बाद अधिशेष भूमि पर जाटों को अधिकार मिला जबकि दलितों को निराशा। पंजाब लैण्ड एलिनियेशन एक्ट 1901 के कारण दलितों को कृषि भूमि के मालिकाने से वंचना को मानों स्थायी बना दिया गया।

दलित जातियाँ सिख आंदोलन के इस चरण में पुनः हाशिए पर आ गईं। वंचना उनके जीवन का स्थाई लक्षण बन गई। लेकिन इस वंचना का उन्होंने विरोध आरंभ किया। 1920 में गदर आंदोलन से जुड़े बाबू मंगूराम मग्गोवालिया ने दलित जातियों के उत्थान और आत्मसम्मान के लिए पंजाब में आदि धर्म आंदोलन आरंभ किया। 'आदि डंका' और 'उजाला' इसके मुख्य पत्र रहे जो इस विचारधारा को जनमानस तक फैलाने का साहित्य विचार बने। इस आंदोलन की चेतना ने समाज में रचनात्मक उर्जा का संचार किया। इस कारण गुरूदास आलम और चन्नन लाल मानक जैसे क्रांतिकारी कवियों का उदय हुआ। इसमें गुरूदास आलम को प्रसिद्ध कवि अवतार सिंह पाश ने पंजाब का पहला क्रांतिकारी कहकर सम्बोधित किया है। प्रसिद्व आलोचक प्रो. चमनलाल इस बारे में कहते हैं –' पंजाबी कविता में गुरूदास आलम की पूरी कविता ही दलित जीवन और चिंतन की सशक्त अभिव्यक्ति है। एक तरह से हम उन्हें पंजाब का प्रतिनिधि दलित कवि कह सकते हैं।' क्रांति की इस चेतना में महत्वपूर्ण मुकाम 1960 के आखिरी वर्षों में नक्सलवादी आंदोलन के साथ आया। इस आंदोलन में दो दलित कवियों–सन्तराम उदासी (1939–1986) और लाल सिंह दिल (1943–2007) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कवि उदासी की रचनाओं –'लहू भीजै बोल', 'बुर्जुवा के ताने बाने और ' मजदूर लडकी की पहली रात' में वंचित जीवन के शोषण की तस्वीर प्रस्तुत की गई है। वहीं लाल सिंह दिल का कविता संग्रह 'सतलज दी हवा' और 'बहुत सारे सूरज' ने पंजाब की सांस्कृतिक–वैचारिक मान्यताओं को सवालों के दायरे में खड़ा किया है। उन्होंने ब्राह्मण संस्कृति की जगह पनपने वाले जाट प्रभुत्व का विरोध किया।

वर्तमान में बलबीर माधोपुरी, राम अरस, सुलाखन मीत, गुरूमीत, मंजीत कदार, भगवान ढिल्लन, मनमोहन, जयपाल, साधु सिंह इकबाल घारू और बूटा सिंह अशांत आदि कवि गुरू रैदास, आलम और लाल सिंह दिल की प्रगतिशील परंपरा को वर्तमान में आगे बढ़ा रहे हैं। इनमें मदन वीरा और द्वारिका भारती ऐसे सशक्त नाम हैं जिनकी कविताओं का अध्ययन इस ईकाई में किया जा रहा है।

3.2 मदन वीरा : जीवन और रचना कर्म

मदन वीरा का जन्म 15 नवम्बर 1962 को बसीं जलाल, पंजाब के एक दलित परिवार में हुआ था। बचपन से ही शिक्षा के बारे में उनकी ललक रही। उन्होंने पंजाबी भाषा में परास्नातक की उपाधि प्राप्त की। शोध स्नातक के रूप में उन्होंने एम.फिल का कार्य पूरा किया। भाषाई अध्ययन के साथ ही उन्होंने पत्रकारिता की शिक्षा भी हासिल की। पत्रकारिता ने उनके भीतर के सामाजिक सरोकारों को संघर्ष की दिशा में मोड़ा। वे समसामयिक मुद्दों को लेकर निरंतर सक्रिय रहे हैं।

उन्होंने अपनी नौकरी के आरंभिक चरण में प्रख्यात संस्था नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादक के रूप में कार्य किया। प्रकाशन की दुनिया के बाद वे अध्यापन के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इसके साथ ही विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर उनकी पत्रकारिता की धार दिखाई देती है। लेकिन उनकी प्रतिष्ठा उनके रचनात्मक कार्यों के कारण है। उन्होने पंजाबी कविता को अपनी युवा उर्जा से नया रूप दिया है। उनकी 32 कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी, उड़िया और असमिया भाषाओं में हो चुका है। इसके साथ ही उन्हें गुरूदयाल पंजाबी अवार्ड समेत कई पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। उनकी कुछ ख्याति परक रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1. भाखिया (काव्य संग्रह)
2. मनुकरू दी इबारत (काव्य संग्रह)
3. हरफन दी महक (काव्य संग्रह)
4. खारा पानी (काव्य संग्रह)
5. टांड टानी (काव्य संग्रह)

3.3 घोड़ा कविता का पाठावलोकन

घोड़ा

घोड़े के पास
सिर्फ 'हाँ'में हिलाने के लिए सिर है
नर्म पीठ है
हिनहिनाता है सवार के इशारे पर
बैठता है, कान उठाता है
आँखे खोंलता है –सवार की हुंकार पर
उसकी अपनी दौड़ है
हरी या सूखी घास का ढेर
थोडा सा छोलिया
पेट भर पानी
और दिशाहीन दौड़ने के लिए चार टाँगें हैं।
वह दौड़ता है सवार के हुक्म पर
उसके पैरों में नालें हैं
पीठ पर टिकी है काठी
मुंह में पड़ी है लोहे की लगाम
घोड़े का सदियों से वास्ता है
नोकदार जूती वाले सवार से
मुलायम मूठ वाले चाबुक से
कभी नरम, कभी गरम
सवार की कड़क से
सवार के नखरे से
घोड़ा नहीं जानता कि
वह पैरों से खोद सकता है धरती
दुलत्तियों से तोड़ सकता है
सवार का चेहरा

चबा सकता है चाबुक को
नरम हाथों सहित
तोड़ सकता है लगाम
गिरा सकता है
पीठ पर पड़ी काठी को
कुचल सकता है
सदियों से सवार देह को
पर, घोड़ा तो अभी घोड़ा है
पंगु का पंगु है
न समझता है, न सोचता है
बस, अपने आप को ही नोचता है

यह कविता एक रूपक के रूप में लिखी गई है। रूपक में कविता के अर्थ दो स्तरों पर निकलते हैं। एक बाहरी–प्रस्तुत और दूसरा अंतःनिहित– अप्रस्तुत। जब इन दोनों ही रूपों को कविता साध लेती है तो कवि का कौशल अपनी पूर्णता प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत रूप में मदन वीरा की कविता में घोड़े के जीवन और उसकी यातना का बयान किया जा रहा है। लेकिन अप्रस्तुत रूप में यह दलित जीवन और उसकी यातना का बयान है। इस संदर्भ में इसकी विशेषताओं को हम निम्न बिन्दुओं पर देख सकतें है।

3.3 मूल संवेदना और स्वरूप

'घोड़ा' कविता घोड़े के देह के बयान से आरंभ होती है। घोड़े का सार उसकी गति में है और गति का कारण उसकी देह है। कवि कहता है कि घोडे का सिर है। सिर की बनावट देह का अहम हिस्सा है। मस्तिष्क में विचार रहते हैं और यहीं से जीव अपने जीवन के समस्त निर्णय लेता है। लेकिन घोड़ा अपना निर्णय स्वयं नहीं लेता है वह तो लिए गए फैसले की सहमति में अपना सिर हिलाता है। उसके पास 'नहीं' कह सकने का कोई विकल्प नहीं है। अन्यथा उसकी नर्म पीठ पर प्रहार हो सकते है। नर्म पीठ कमजोर कड़ी है जिसे दबाने पर दर्द होता है। कवि आगे कहता है कि घोडे के पास दौड़ने के लिए चार टाँगे हैं। लेकिन उसकी दौड़ने की कोई दिशा नहीं है। वह उस दिशा में नहीं दौड सकता है जिस ओर उसका जाने का मन है, जिस ओर उसकी टाँगे उसे ले जाना चाहती हैं। वह दूसरे की बताई दिशा में जाता है इसलिए उसकी दौड दिशाहीन है। न गति उसकी है, न ही दिशा उसकी है। इसी तरह उसकी देह में आँख, कान, गला होकर भी नहीं है कुछ भी अपने लिए नहीं है। दूसरे की मर्जी से ही आँखे देखती है, गला आवाज करता है, कान उठता है। यह विडम्बना है कि सब कुछ है लेकिन कुछ भी नहीं है। सब किसी के मालिकाने में है, किसी की गुलामी में है।

सदियों से वर्चस्वादियो की गुलामी में दलित समाज त्रासदी झेल रहा है। यह समाज इस देश की समृद्वि का आधार है। इस देश में बनी शान–शौकत, भवन–भव्यता, महल–ताजमहल, साधन –विलास सब कुछ उसी की मेहनत के बल बूते पर बना है। लेकिन इनमें से किसी को भी दलित समाज अपना नहीं कह सकता है। इस भावना को एक हिन्दी कविता में कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया गया है–

'कांधे धरी यह पालकी
है किस कन्हैया लाल की
इस गाँव से उस गाँव तक

नंगे बदन फेंटा कसे
बारात किसकी ढो रहे
किसकी कहारी में फँसे''

दलित समाज इसी तरह सवर्ण समाज की सेवा में फँसा है। प्रो. डर्क्स ने कभी गरीबी के अर्थशास्त्र को स्पष्ट करते हुए कहा था – कोई आदमी इसलिए गरीब होता है क्योंकि वह गरीब होता है। यह एक दुष्चक्र है जिसमें एक बार फँसने पर बाहर निकलना बहुत भारी पड़ जाता है। सामाजिक गुलामी को स्पष्ट करते हुए आलोचक मुद्राराक्षस कहते हैं 'भारत में तो धर्म ने राजा, पुरोहित और व्यापारी को समस्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ कामगार समाज को पराधीन, दास और सेवक बनाए रखने का अधिकार दे दिया है। सवर्ण छोड कर बाकी सारा समाज हमेशा दासता में बने रहने और इस तरह कभी विद्रोह न करने को अभिशप्त बना दिया गया। ''सब कुछ को सहन करने की बाध्यता ने पहले दलित समाज को सहिष्णु और अंत में सेवक बना दिया। पंजाब में दलित समाज को शूद्र समाज के जाटों की सेवा को भी बाध्य होना पड़ा। एक ऐसा सेवक जिसके पास एक मनुष्य की देह, अंग–उपांग और शक्ति सब कुछ है लेकिन उसे अपने अस्तीत्व पर भी अधिकार नहीं हैं। धर्म द्वारा निर्धारित वर्ण–जाति प्रथा ने उसे केवल अन्य तीन वर्षों की सेवा करने के लिए धर्म के बंधन में कस दिया। उसकी समस्त उपादेयता स्वयं उनके उत्थान, विकास अथवा उद्वार के लिए नहीं बल्कि दूसरों की सेवा तक सीमित है। उसके पास चिंतन की, फैसला लेने की क्षमता है लेकिन वह दूसरों के फैसले सिर झुका कर मानने को बाध्य हैं। उनकी शक्ति स्वयं उनके हित में काम नहीं आ रही है।

कविता में आगे कवि घोड़े की बेबसी की वजह बताता है – उसका पेट। इस पेट के लिए उसे थोड़ी घास चाहिए, थोड़ा छोलिया चाहिए और ढेर सारा पानी चाहिए। घोड़ा यह सब कुछ आजादी के क्षणों मे स्वयं ही हासिल करता था लेकिन गुलामी ने उसे मालिक पर निर्भर बना दिया। वह दाने का मोहताज बन गया है। गुलामी के निशान उसकी देह की ताकत को नियंत्रित करते है । अनियंत्रित शक्ति कभी गुलाम नहीं रह सकती है। इसीलिए उसके मुँह में लगाम है, पैर में नाल है और पीठ पर काठी है। इन उपकरणो ने ही उस पर नियंत्रण रखा है और ये उपकरण सवार के हैं। सवार ही मालिक है और उसका मालिकाना व्यवहार उसके जूते की नोंक, चाबुक और मिजाज से जाहिर होता जाता है। घोड़ा सदियों से मालिक की गुलामी में बँधा है। इसी प्रकार दलित समाज सदियों से गुलामी के इस चक्र में फँस गया है। उसकी समूची ताकत और उर्जा नियंत्रित है और दूसरे उसके दम पर फलते फूलते जा रहे हैं

आरंभ में कविता घोड़े के बहाने दलित समाज की यातना का बयान करती लेकिन इसका आखिरी चरण समाज के स्वप्न और आकांक्षा का बयान है। अभी तक कविता का स्वर शामक है, दुख है, सहिष्णुता है, धीरज है। लेकिन आखिरी चरण में कविता का रूप बदल जाता है, धीरज का बाँध टूट जाता है। कवि घोड़े को उसकी अपार क्षमता का बोध कराना चाहता है। घोड़े मे प्रचण्ड शक्ति है, जो कि आमतौर पर हर मेहनतकश में होती है। इस प्रचण्ड शक्ति के आगे मालिक के रूप में सवार की कोई बिसात नहीं है। घोड़ा उस धरती को खोद सकता है जिस पर वह चाकरी को मजबूर है। उसकी टाँगों की मजबूती सवार का चेहरा बिगाड कर रख सकती है। उसके जबड़े की ताकत सवार के हाथ को, गुलामी की लगाम को चबा सकती है। उसकी देह उपर पड़ी काठी और सवार दोनों को गिरा सकती है, उन्हें चकनाचूर कर सकती है। इस प्रकार सदियों से चली आ रही सवारी और गुलामी का अंत हो सकता है। लेकिन ऐसा कुछ होता नहीं है। कवि कहता है कि इसका कारण घोड़े की समझ है। यह समझ उसे अपनी अपार शक्ति का एहसास नहीं होने देती

है। वह बगावत के बारे में सोचता नहीं, अपनी ताकत को समझता नहीं बस स्वयं को खपाए हुए चला जाता है।

कवि घोड़े के माध्यम से दलित समाज को उसकी प्रचण्ड शक्ति का बोध कराना चाहता है, उसे उसकी छिनी गई मानवीय गरिमा वापिस दिलाना चाहता है। दलित समाज की मनुष्यता का जो अपहरण हुआ है, उसका अहसास कराना चाहता है। यह कार्य केवल सोच बदलने से हो सकता है और सोच तब बदलेगी जब दलित समाज अपनी समझदारी विकसित करेगा। यह समझदारी परंपरा से आती है, दलित चिंतन परंपरा से। यह परंपरा ज्योतिबा फूले, पेरियार और बाबा साहब आम्बेडकर की है। इसके उपरांत ही दलित समाज को अपनी ताकत का अहसास होगा। अहसास जब इंसान के जेहन में उतर जाता है तब दुनिया का कोई काम नामुमकिन नही रह जाता है।

3.3.2 सामाजिक गुलामी का रूपक

'घोड़ा' कविता में दलित समाज की गुलामी को रूपक में प्रस्तुत किया गया है। यह गुलामी सांस्कृतिक–धार्मिक कलेवर में है। लेकिन कवि ने यह दर्शाया है कि आर्थिक निर्भरता और शक्ति का अभाव ही इस सामाजिक गुलामी का मूल कारण है। जाति व्यवस्था और कुछ नहीं, दलितों की आर्थिक क्रियाओं पर सामाजिक नियंत्रण है, उनकी मेहनत को अपने लिए मुफ्त में इस्तेमाल करने का एक आर्थिक उपाय है। कविता में घोड़ा कुछ घास और छोलिया का मोहताज है। इसी के इर्द गिर्द उसकी यातना का चक्र बुना गया हैं। जाति व्यवस्था और उसकी जजमानी ही अर्थ का ताना बाना बुनती हैं। इसमें दलित जातियों को कृषि भूमि के स्वामित्व से वंचित रखा जाता है या कहें आर्थिक आत्मनिर्भरता से वंचित रखा गया।

पंजाब के संदर्भ में देखे तो अंग्रेज सरकार ने 1860 के बाद नहरों के विकास के कई उपाय निकाले। इस कारण काफी मात्रा में नहर, तालाब और कॉलोनियों का विकास स्वतः हुआ। इन जमीनों का वितरण यदि न्यायपूर्वक किया जाता तो दलितों के हिस्से में आत्मनिर्भरता के लायक जमीन आती। लेकिन जमीनों को ब्रिटिश सत्ता ने जाट जैसी खेतिहर जातियों को आबंटित किया और दलितों को छोड़ दिया। इन खेतिहर जातियों ने कर्जे के कारण जब अपनी जमीने शहरी खत्रियों जैसी जातियों के हाथों मे गिरवी रखना आरंभ कर दिया तब पंजाब लैण्ड एलियनेशन एक्ट' 1901 पास किया गया। इसमें गैर खेतिहर जातियों को कृषि भूमि के स्वामित्व से वंचित कर दिया गया। ऐसे में दलितों, जिनकी अधिकांश आबादी गाँवों में निवास करती है, के पास आत्मनिर्भरता का कोई माध्यम नहीं बचा। वे रोजी रोटी के लिए दूसरी जातियों पर निर्भर हुए तो अपनी आजादी खो बैठे। जाति की जकडन ने उन्हें उनकी मानवीय गरिमा से वंचित कर दिया। सिख धर्म और उसका समतावादी दर्शन भी उनकी वंचना को दूर नहीं कर पाया। इस वंचना के बारे में प्रो. विमल थोरात कहती हैं – ''भारत में जाति संस्था विभिन्न धार्मिक और मनोवैज्ञानिक उपायों के द्वारा कार्य करती है, जिनका मकसद दलितों को उनकी मानवीय गरिमा से वंचित करना होता है। इन उपायों और व्यवहारों को ब्राह्मणवादी धार्मिक ग्रंथों के द्वारा मान्यता दी जाती है।'' कविता में इस प्रकिया को रूपक के माध्यम से दर्शाया गया है। थोड़े से शब्दों में कवि ने दलित इतिहास को, उसकी वेदना को व्यक्त कर दिया। कविता इसीलिए एक मायने में घनीभूत इतिहास होती है, जो पढ़ने वाले को अपने साथ लेकर चलती है।

3.3.3 मानवीय गरिमा की आकांक्षा

'घोड़ा' कविता रूपक में लिखी गई है। लेकिन यह रूपक पूरी तरह सफल नहीं हो पाता है। एक ओर घोड़ा तो दूसरी ओर दलित समाज। घोड़े की यातना को बताते हुए कवि

अंत में जाते जाते रूपक निर्वाह के अपने इरादे को छोड़ देता है, सहिष्णुता को छोड देता है, सहना छोड़ देता है और प्रतिरोध की मुद्रा में आ जाता है। कवि जिस विद्रोह की माँग करता है, जिस प्रतिकार का आवाह्न करता है, वह प्रतिकार कोई घोड़ा बेचारा कभी कर ही नहीं सकता है। ऐसा प्रतिरोध तो केवल प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना के रूप में मनुष्य ही कर सकता है। ऐसा प्रतिरोध समाज में वह दलित कर सकता है, जिसके पास क्रांतिकारी चिंतन उपस्थित हो। कवि मानो यह भूल जाता है कि वह घोडे के उपर लिख रहा था। घोड़े की वेदना ने उसके समाज की या खुद उसकी वेदना को छू लिया। वह आंदोलित हो उठा। यह कवि की हार अथवा कविता की कमजोरी नहीं है, यह रूपक की कल्पना पर युग के वास्तविकता की, बेबसी पर संकल्प की, और भाग्यवाद पर कर्म के आकांक्षा की जीत है।

दार्शनिक सार्त्र ने कभी कहा था 'हर संत का एक अतीत होता है और हर अपराधी का एक भविष्य होता है। किसी की जिन्दगी की कहानी लिखना तो कुछ पन्ने आखिर में खाली छोड़ना... कौन जाने क्या हो जाय!' एक घोड़े के बारे में कहा जा सकता है कि यह कल घोड़ा था, आज घोड़ा है और कल भी एक घोड़ा ही रहेगा लेकिन यह बात एक इंसान और उसके समाज के बारे में नहीं कही जा सकती है। एक इंसान और एक समाज एक दिन फकीर हैं तो कुछ समय बाद वह सत्ता का सशक्त दावेदार हो सकते हैं। मदन वीरा की कविता में घोड़े और इंसान के बीच फर्क का यह अहसास मौजूद है। यही वजह है कि घोड़े की वेदना से व्यथित कवि अपने समाज से दमन के खिलाफ उठ खड़े होने की, बगावत की माँग करने लगता है। यह संभव है कि सब कुछ सहन करने वाला इंसान कल को क्रांति के द्वारा सब कुछ बदल देने की माँग करने लगे।

3.3.2 भाषा और शिल्प

'घोड़ा' कविता बनावट के स्तर पर दो भागों में विभाजित है। पहला भाग यातना का है। इस भाग मे भाव गहरे और शांत है। इसी के अनुसार उसकी भाषा है। यह मंद गति से चलती है। लगता है यातना ऐसी नियति है जिससे छुटकारा आसान नहीं है। फलत; भाषा में किसी प्रकार गति नहीं दिखती है। क्रिया के रूप मंद है। यहाँ तक कि घोडे का दौड़ना भी –

'उसकी अपनी दौड़ है
हरी या सूखी घास का ढेर
थोडा सा छोलिया
पेट भर पानी'

लेकिन कविता का दूसरा भाग आवेग से भरा है। इसमें भाव उफान पर उठते हैं, विचार दौड़ने लगते हैं और समूचा परिवेश गति से भर जाता है। भाषा में क्रिया की सक्रियता आ जाती है। अब क्रिया के रूप कुछ इस प्रकार है–

तोड सकता है लगाम
गिरा सकता है
पीठ पर पडी काठी को
कुचल सकता है
सदियो से सवार देह को

भाव के अनुरूप भाषा के तेवर में यह परिवर्तन कवि के कौशल को दर्शाता है। कविता रूपक है लेकिन इसके मात्र दो अर्थ निकलते है – एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। यह कोई रीति कविता नहीं है कि इसके अनेक अर्थ निकले और हर अर्थ पाठक को चमत्कृत कर जाय। कवि मदनवीरा न ही कलावादी है और न अनेकांतवादी। उन्होंने कविता के

लिए रूपक का जो शिल्प अपनाया है उसके पीछे प्रयोग की प्रेरणा नहीं बल्कि सामाजिक सरोकार का आग्रह है। घोड़े की यातना के माध्यम से दलित जीवन की विडम्बना का निरूपण करना है। कविता में भाव का आवेग है लेकिन चिंतन की गहराई भी। यह चिंतन कविता में अलग से दिखाई नहीं देता क्योकि यह अनुभूति का अंग है।

3.4 द्वारका भारती : जीवन और रचना कर्म

द्वारका भारती पिछले तीस सालों से पंजाबी दलित आंदोलन का नेतृत्व कर रहे हैं। उन्होने अपने लेखन से न केवल पंजाबी दलित साहित्य और सामाजिक आंदोलन को एक दिशा दी है बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे जा रहे दलित साहित्य को भी प्रेरित किया है। उन्होंने हिन्दी भाषी पाठकों को पंजाबी दलित साहित्य का हिंदी में अनुवाद उपलब्ध कराकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे साहित्यकार के लिए केवल साहित्य तक सीमित रह कर सिमटने के बजाय समाज में बदलाव के लिए आंदोलनकारी भूमिका को श्रेयस्कर मानते हैं।

द्वारका भारती का जन्म 24 मार्च 1994 को होशियारपुर के एक दलित परिवार में हुआ था। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण वे अपनी शिक्षा को मैट्रिक से आगे नहीं जारी रख सकें। लेकिन पढ़ने का मोह उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। वे लेखन के साथ श्रम को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। यही वजह है कि कवि – लेखक के रूप में अपनी पहचान कायम होने के बाद भी उन्होंने जूते की दुकान पर अपना काम बंद नहीं किया है। वे दलित समाज की हकीकत को न केवल अपने रचना कर्म में व्यक्त करते है बल्कि समाज की बेहतरी के लिए आगे बढ़ चढ़ कर आंदोलनों में अपनी भागीदारी करते हैं।

द्वारका जी का तीस वर्षो का साहित्यिक सफर एवं संघर्ष उन्हें विशिष्ट बनाता है। पंजाबी एवं हिन्दी की शायद ही कोई पत्रिका अथवा पत्र हो जिसमें उनकी कविताएँ अथवा उनका अनुवाद न छपा हो। पुराने – नए सभी दलित लेखकों के साक्षात्कार से लेकर विविध रचनाओं के अनुवाद कार्यों को उन्होने संपादित किया है।

3.5 आज का एकलव्य : कविता का पाठावलोकन

आज का एकलव्य

ऐ महाभारत के द्रोणाचार्य !
तुमने आज पुनः गुरू–दक्षिणा का ढोंग रचा है
लेकिन मैं हूँ एकलव्य आज का
सदियों पुराना नहीं
तुम्हारी नस–नस से परिचित हो चुका हूँ मै
तुम आज तक इसीलिए महिमा–मंडित हो
कि गुरू दक्षिणा की आड़ में
उस भोले भाले बालक का अंगूठा
इसलिए हाथ से उडवा लिया था कि
तुम्हारे साधे हुए घोड़ों को कोई
जमीन न सुंघा दे
और तुम्हारा तेज सदा के लिए
मलिन न हो जाए
मै तुम्हारे बुद्धि चातुर्य को
पहचान चुका हूँ

सदियों की तरह आज भी
मेरे कर्मठ हाथों का कर्मठ अंगूठा
तुम्हारी आँखों का तिनका है
तुम्हारी सर्प दृष्टि
मै आज तक भूला नहीं
उस समय की तुम्हारी जहरीली मुस्कान
आज तक मेरे सीने में धूसी हुई है।
मै जानता हू कि
जब तक यह कर्मठ अंगूठा
तुम्हारे हाथ में होगा
मेरा नाम
इतिहास के शूरवीरों में नही होगा
तब मेरी हर कलाकृति
तुम्हारी होगी
शरीर मेरा तपेगा
चेहरा तुम्हारा दमकेगा
और मै हमेशा की तरह
इतिहास के पन्नों से
गधे के सींग की तरह नहीं मिलूंगा
तुम्हारे महलों की नींव में
दफन हो जाउंगा सदा के लिए
लेकिन याद रख
यह काठ की हांडी तुम्हारी
फिर नहीं चढेगी आग पर
कहानी वही होगी
अंगूठा भी वही होगा
तुम्हे गुरू दक्षिणा से इंकार न होगा
तुम्हे गुरू दक्षिणा मिलेगी
अवश्य मिलेगी
लेकिन अंगूठा कटवाकर नहीं
अंगूठा दिखाकर

यह कविता मिथक के द्वारा दलित दृष्टि का निरूपण करती है। यह दलित दृष्टि वास्तव में दलित शक्ति है। दृष्टि के आगे अभी तक कोहरा छाया था। कर्मवाद और पुर्नजन्म की अवधारणाओं ने दलित समाज के आगे कोहरा फैलाया था। वेद–पुराण और स्मृतियों आदि संस्कृत ग्रंथों में इनका तात्विक और कानूनी आधार दिखाया गया तो रामायण – महाभारत की मिथक कथाओं ने इन्हें भावनाओं की चाशनी के साथ पेश किया । दलित समाज को इसी तरह भरमाया गया। हिन्दूओं की तथाकथित एकमात्र मान्य गीता में भी तमाम तार्किकता और बौद्विकता का प्रदर्शन किया गया है । इसके बाद नौवे अध्याय के 32वें श्लोक में कह दिया गया – शूद्र और स्त्री पाप योनि के है। इस हिसाब से भारत में हर दस में नौ नागरिक पापी ठहरते हैं। दलित, आदिवासी, पिछड़े और स्त्रियाँ मात्र अपने जन्म के कारण पापी हैं। यह धर्म द्वारा रची गई बहुत बड़ी साजिश है। जन्म, कर्म–फल, भाग्यवाद के मिथ्या फेरों में सामान्यजनों को भूलावे में रखकर उन्हें हमेशा के लिए गुलामी की दशा में रखा जा सकें। यही प्रश्न की चेतना आज दलित समाज के जागरण का आधार है । अब वह ब्राह्मणवादी संस्कृति को श्रद्वा नहीं सवालों के साथ देखता है। ऐसा ही एक सवाल कवि द्वारिका भारती ने इस कविता में उठाया है।

3.5.1 मूल संवेदना और विषय वस्तु

महाभारत की कथा के अनुसार एकलव्य एक भील बालक था। जिसने अपनी लगन और अभ्यास से धनुर्विधा में महारत हासिल की । अपनी लगन में उसने राजगुरू द्रोणाचार्य को अपना गुरू मान लिया। एक ब्राह्मण के रूप में द्रोणाचार्य किसी भील को कदापि अपना शिष्य नहीं बनाते । लेकिन जब उन्होंने एकलव्य की धनुर्विद्या का चमत्कार देखा तो उन्हे लगा कि यह उनके अपने द्विज शिष्य अर्जुन को हरा देगा। द्रोणाचार्य ने कभी एकलव्य को साक्षात् शिक्षा नहीं दी थी। इसके बावजूद उन्होने धूर्तता कर एकलव्य से अपनी गुरू दक्षिणा के रूप में उसका अंगूठा मांग लिया। यह श्रद्वा दलित समाज के लिए घातक थी इसलिए आज का दलित विद्यार्थी मानो द्रोणाचार्य के रूप में शिक्षकों को सम्बोधित करता हुआ कह रहा है कि तुम्हारा समय बीत चुका है। नया समय आ गया है। मैं आज के युग का दलित विद्यार्थी हूं। अर्थात् आज के दलित को ब्राह्मणवाद में कोई श्रद्वा नहीं है क्योकि वह विवेक से काम करने लगा है, श्रद्धा से नहीं। वह तथाकथित गुरूओं की छद्म महिमा से परिचित हो चुका है। उनका स्नेह एक छलावा है । यह दिखावा करके ही दलित समाज को ठग लिया गया, उसके हाथ से उसका अंगूठा काट लिया गया। आज का एकलव्य द्रोणाचार्य से सीधे कहता है कि वह स्नेह के पीछे की साजिश को जान चुका है। इस साजिश का उद्देश्य दलितों को उनकी प्रतिभा से वंचित करना है। यह प्रतिभा ही उनकी आँखों में चुभती है। जिससे कि वे सत्ता, शासन, यश और सम्मान से वंचित रह जाए। यह सभी कुछ द्रोणाचार्य के समाज के लोगों को प्राप्त हो जाय। अन्यथा द्रोणाचार्य जैसे लोगों का समाज से प्रभुत्व धूमिल हो जाएगा। इस प्रभुत्व को जमाने के लिए ही बुद्वि चातुर्य का सहारा लिया गया है, जिसे आज का दलित विद्यार्थी पहचान चुका है।

कविता में आगे इतिहास के पन्नों को फिर से पलटा गया है।दलित सदा से ही रचनात्मक उर्जा से भरा रहा है। लेकिन इस रचनात्मकता को कभी द्रोणाचार्य जैसे लोगों ने मान्यता नहीं प्राप्त होने दी है। उन्होंने एक साजिश के तहत दलितों के विश्वास के साथ छल किया है। उनकी साँप जैसी घातक मार, जहरीली मुस्कान आज भी दलित को उद्वेलित कर देती है। इस छल का मकसद दलितों की पहचान, उनके निशान को, उनके गौरव को इतिहास से मिटा देना है।

आज के एकलव्य में कवि की यही चिंता है कि एक बार पहचान मिट जाने पर दलित की हर उपलब्धि पर द्रोणाचार्य के जाति बंधुओं, हितैषियो, अनुयायिओं और समर्थकों का नाम चस्पाँ हो जाएगा। वह जानता है कि समस्त उपलब्धियों की नींव में किसी न किसी दलित का समर्पण, त्याग और बलिदान है। लेकिन उस पर दूसरों का नाम है। इतिहास में सवाल यह पूछा जाता है कि कोणार्क का मंदिर किस राजा ने बनवाया था? जबकि सही सवाल यह है कि कोणार्क का मंदिर किस कारीगर ने बनाया था? गलत सवाल के जवाब से इतिहास की किताबे भरी पड़ी है लेकिन इस सही सवाल का जवाब इतिहास की किसी किताब में नहीं मिलता है। कारण है कि कारीगर प्रायः दलित होते थे, जिनका नाम लिखा नहीं जा सकता था।

अंत में, आज का एकलव्य कहता है कि 'द्रोणाचार्य ! अब तुम्हारी चालाकियाँ आगे नहीं चलने वाली।' अर्थात् दलित अब इतिहास बोध से संपन्न है, वह चेतना से संपन्न है। उसके पास अपनी मानवीय गरिमा का बोध है और इसकी रक्षा का जतन भी है। अगर फिर से उससे अंगूठे की माँग की जाती है, गुरूदक्षिणा पर जोर दिया जाता है, तो गुरूदक्षिणा तो दलित देगा लेकिन अंगूठा दिखाकर न कि अंगूठा कटवा कर।

3.5.2 मिथक और आधुनिकता

मिथक अपने अतीत को देखने की एक दृष्टि है। यह इतिहास से इस मायने में भिन्न है कि इसमें तथ्य के बजाय कल्पना का और वस्तुनिष्ठता के बजाय आत्मनिष्ठता पर बल होता है। इसमें घटनाओं की कल्पना द्वारा अतिरंजित व्याख्या होती है। द्रोणाचार्य – एकलव्य एक मिथक है लेकिन इसमें आर्य द्वारा दलितों के साथ छल की घटना और उसकी व्याख्या महत्वपूर्ण है। समस्त संस्कृत वाङमय में राक्षस और देवताओं के बीच शत्रुता का मिथ है। इन सभी में एक बात निंविवाद रूप से है कि राक्षस बेहद बलिष्ठ थे। तो आखिर इन बलिष्ठ लोगों को गुलाम कैसे बना लिया गया? मूलनिवासी के रूप काले चिपटी नाक वाले, अपभ्रंश बोलने वाले कहे गए दलित–आदिवासी समाज के साथ बार–बार छल करने के मिथक संस्कृत ग्रंथो में आते है –

बलि के साथ वामन का छल करना
सुग्रीव पर राम का छिपकर वार करना
नारद का भेदिया के रूप में राक्षसों से छल करना

मिथक कहीं न कहीं हकीकत का अंश अपने गर्भ की गुफा में धारण करते है, जिसके संधान का प्रयास डी.डी.कोसाम्बी जैसे विद्वानों के अलावा भारतीय इतिहास में नही किया गया। कवि इन मिथकों की अपने समय के अनुसार व्याख्या करते है। द्वारका भारती की कविता ने पुराने मिथ की व्याख्या की है, जिसके तहत ही आधुनिक चेतना की झलक आती है। यह आधुनिक चेतना प्रश्न करने की है, श्रद्धा नहीं विवेक की है तथा मिटाने की नहीं, पहचान बनाने की है। इसी आधुनिकता के तहत आज का एकलव्य पुराने द्रोणाचार्य से सवाल करता है।

3.5.3 भाषा और शिल्प

'आज का एक लव्य' यह कविता मिथक के उपर लिखी गई है। इसकी बनावट में दो कालखण्ड एक दूसरे के आमने सामने हैं। दोनों काल एक दूसरे के समानांतर चलते हुए भी टकराते रहते है। इस टकराहट से ही कविता में गति का समावेश हुआ है। कवि की चेतना से ही आज के एकलव्य के चरित्र का गठन हुआ है। चेतना सम्पन्न एकलव्य की कविता में केन्द्रीय भूमिका है। उसके सामने द्रोणाचार्य का चरित्र है। वह कविता में साक्षात् रूप से उपस्थित नहीं हैं लेकिन पार्श्व में उनका प्रभाव समूची कविता की बनावट और उसके कथ्य पर है। जिस प्रकार 'जूलियस सीजर 'नाटक में सीजर अपनी अनुपस्थिति के बावजूद प्रभावी होता है। उसी प्रकार एक प्रतिपक्ष के रूप में यह कविता द्रोणाचार्य को दिया जाने वाला उत्तर है।

कविता में संवाद के स्थान पर उत्तर देने का संकल्प है। इसलिए इसमें निरंतर भावना के प्रवाह की स्थिति है। इस स्थिति में ही नया, पुराना, कार्य–कारण, परंपरा और प्रतिरोध सभी कुछ शामिल हो गया। एकलव्य और द्रोणाचार्य तो एक बडे प्रतीक के रूप में उपस्थित है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक 'अंगूठा' है। यह 'अंगूठा' प्रतिभा का प्रतीक है। अंगूठा अथवा प्रतिभा ही शासन, सत्ता, मान, सम्मान यश और पहचान का आधार है। कविता के अंत में जब अंगूठा दिखाया जाता है तो ठेंगा बन जाता है। यही पर कविता समाप्त हो जाती है। उत्तर देने की शैली के कारण भाषा में प्रवाह है। छोटे, सरल और बोलचाल के शब्दों के कारण इस प्रवाह में कोई बाधा नहीं पड़ती है। इस कारण कविता अंत में जाकर अपना प्रभाव एक बिन्दु पर छोड़ कर स्वयं को सार्थक कर जाती है।

3.6 सारांश

'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' इन दोनों कविताओं का गहरा संबंध इतिहास बोध और दलित चेतना के प्रसार से है। जिसका उद्देश्य दलित समाज की मानवीय गरिमा की पुर्नस्थापना करना है। भारत में इतिहास और इतिहासकारों ने दलित समाज के योगदान की मनमानी उपेक्षा की है। इस उपेक्षा का मकसद उनकी पहचान को मिटा देना है। पहचान मिटाकर इस समाज के योगदान, गौरव और आत्मसम्मान को समाप्त करने का प्रयास किया गया लेकिन दलित साहित्य और विशेषकर दलित कविता ऐसे प्रयास के विरूद्व चेतना के पहरेदार की तरह उपस्थित है। 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' कविताएं प्रतिरोध की चेतना से संपन्न है। एक ओर इनमें सदियों की यातना का घाव है क्योंकि कहा भी गया है कि कविता किसी समाज का घनीभूत इतिहास होती है। लेकिन इनमें केवल इतिहास की नहीं है बल्कि दलित समाज का सपना है, भविष्य है और अपने यातना से उबरने की कोशिश भी है।

इकाई 4 गुजराती दलित कविता : 'माँ! मैं भला की मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा'

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 रचनाकारों का परिचय

- 4.2.1 नीरव पटेल
- 4.2.2 जयंत परमार
- 4.2.3 दलपत चौहान

4.3 गुजराती में 'दलित' शब्द का प्रयोग और दलित कविता की आरंभिक पृष्ठभूमि

4.4 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता का पाठावलोकन

4.5 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता का विश्लेषण

- 4.5.1 दलित जातियों के सामाजिक अंतर्विरोध
- 4.5.2 सुविधाभोगी दलित मानस की आलोचना
- 4.5.3 दोहरे व्यवहार एवं सामाजिक व्यक्तित्व में बदलाव
- 4.5.4 सामाजिक परिवर्तन का स्वप्न
- 4.5.5 जातीय चेतना से मुक्ति की चाहत

4.6 'पड़' कविता का पाठावलोकन

4.7 'पड़' कविता का विश्लेषण

- 4.7.1 'पड़' नामक जजमानी प्रथा का चित्रण
- 4.7.2 रूढ़ी और परंपराओं के प्रति विद्रोह

4.8 'व्यथा' कविता का पाठावलोकन

4.9 'व्यथा' कविता का विश्लेषण

- 4.9.1 धार्मिक एवं आस्थावादी मानस के खिलाफ प्रतिक्रिया
- 4.9.2 प्रगतिशील दृष्टिकोण और प्रतिरोध के स्वर

4.10 सारांश

खंड के प्रश्न

कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

एम. एच. डी. 20 खंड 1 के अंतर्गत पिछली इकाई एक में आप ने पंजाबी दलित कविताएँ 'घोड़ा' और 'आज का एकलव्य' का अध्ययन किया है। इस खंड की यह इकाई गुजराती दलित कविता पर केंद्रित है। इस इकाई में गुजराती दलित कविता के प्रतिनिधिक कवि नीरव पटेल, जयंत परमार और दलपत चौहान की क्रमशः 'माँ! मैं भला की मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा' इन कविताओं का अध्ययन करना है। इन कविताओं के माध्यम से आप गुजराती दलित कविता का स्वरूप और संवेदना को समझ सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- गुजराती में 'दलित' शब्द का प्रयोग और कविता लेखन की आरंभिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे;
- गुजराती दलित कविता का स्वरूप और संवेदना को जान सकेंगे;
- गुजराती के प्रमुख कवि नीरव पटेल, जयंत परमार और दलपत चौहान के सृजन और योगदान को रेखांकित कर सकेंगे;
- 'माँ! मैं भला की मेरा भाई', 'पड़' और 'व्यथा' इन कविताओं का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे;
- गुजराती दलित कविता में अभिव्यक्त वेदना, विद्रोह और परिवर्तनकामी विचारों को समझ सकेंगे; और
- गुजराती दलित कविताओं में अभिव्यक्त दलित चेतना के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

मराठी में दलित साहित्य के विकास के साथ–साथ गुजराती में भी दलित साहित्य अत्यंत तेजी से विकसित हुआ। महाराष्ट्र प्रदेश से सटे गुजरात के कई रचनाकार महात्मा फुले, शाहुजी महाराज और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आंदोलन से परिचित थे। गुजराती के कई रचनाकारों का प्रत्यक्ष रूप में दलित पैंथर आंदोलन से भी संबंध रहा है। मराठी दलित साहित्य के समान ही गुजराती में भी दलित साहित्य का स्वरूप, प्रयोजन और सौन्दर्य के नये प्रतिमान स्थापित हुए है। गुजराती में दलित साहित्य को दिशा देनेवाले नीरव पटेल, जयंत परमार और दलपत चौहान शीर्षस्थ रचनाकर है। इन्होंने साहित्य की लग–भग सभी विधाओं में सृजन किया है। इनकी कविता में दलित चेतना के विभिन्न पहलू प्रस्तुत है। यहाँ नीरव पटेल की 'माँ! मैं भला की मेरा भाई', जयंत परमार की 'पड़' और दलपत चौहान की 'व्यथा' इन चर्चित कविताओं का अध्ययन करना है। यह तीनों कविताएँ दलित जीवन के अलग–अलग पहलुओं को दर्शाती है। नीरव पटेल कविता के माध्यम से सामाजिक जीवन के अंतर्द्वंद्व और अंतर्विरोधों को उजागर करते हैं। वे एक शिक्षित मध्यवर्गीय चेतना और एक अशिक्षित दलित की संवेदना तथा सामाजिक व्यवहार को मुखर करते हैं। जयंत परमार कविता के द्वारा गांवों में प्रचलित जजमानी पद्धति और उसके दबाव में जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हुए दलितों के जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। वे सामाजिक रूढ़ियों को ढोते हुए दलित व्यक्ति के मन में उत्पन्न आत्मग्लानी, पीड़ा, छटपटाहट, जीविकोपार्जन के संघर्ष और वेदना को दर्शाते हैं। वहीं दलपत चौहान अपनी कविता में सामाजिक विषमता, सांस्कृतिक दबाव और सामंती शोषण को विद्रोही तेवर में दर्ज करते हैं। शोषण से संतप्त हुए दलित व्यक्ति के मन में नकार की भावना उत्पन्न होती है और वह समूची संस्कृति का बड़े तार्किक ढंग से खंडन करने लगता है। दलपत चौहान की 'व्यथा' कविता में नकार और विद्रोह के तत्व मौजूद है। अतः गुजराती दलित कविता के इस बहुआयामी पहलुओं को प्रस्तुत इकाई में विश्लेषित किया गया है। आइए, इस इकाई का विस्तृत अध्ययन करते हैं।

4.2 रचनाकारों का परिचय

गुजराती दलित साहित्य को विकसित करने और उसे राष्ट्रीय पहचान दिलाने में कई रचनाकारों का योगदान रहा है। गुजराती में विकसित दलित साहित्य के अंतर्गत कविता

महत्वपूर्ण विधा है। गुजराती दलित कविता में नीरव पटेल, जयंत परमार और दलपत चौहान का विशेष योगदान है। इन कवियों की कविताओं का अध्ययन करने से पहले उनके व्यक्तित्व और रचनात्मक योगदान को समझने की कोशिश करेंगे।

4.2.1 नीरव पटेल

गुजराती दलित साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों में नीरव पटेल विशेष पहचान रखते हैं। इनका जन्म 2 दिसम्बर, 1940 को अहमदाबाद जिले के भुवालडी गाँव में हुआ था। इन्होंने अथक प्रयासों से उच्च शिक्षा ग्रहण की है। नीरव पटेल ने अंग्रेजी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की है। गुजरात में दलित पैंथर आन्दोलन के दौरान दलित साहित्य को दिशा देने के लिए 'आक्रोश' नामक पत्रिका ने विशेषांक निकाले। इसमें नीरव पटेल की कविताएँ प्रकाशित हुई। बाद में नीरव पटेल दलित साहित्य और आंदोलन में सक्रीय हुए और उन्होंने दलपत चौहान और प्रवीन गडवी के साथ मिलकर 'कालो सूरज' नामक संग्रह निकाला। नीरव पटेल की आरंभिक कविताएँ सदियों से दबे आक्रोश को उजागर करती है। यह आक्रोश केवल उनका नहीं बल्कि अमानवीय स्थितियों में रखे गए समूचे दलित समाज का था। नीरव पटेल की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना और विचार अत्यंत प्रखर थे, परिणामस्वरूप आरंभिक दिनों में उनकी रचनाओं पर प्रतिबंध लगाये गए। उनके खिलाफ न्यायालय में लम्बे समय तक मुकदमा चलाया गया। सत्ता और राजशक्ति के द्वारा उनका उत्पीड़न किया गया। इन सबके बावजूद उनकी आस्था अडिग रही। अंततः उनकी रचनाओं पर लगाई पाबंदी हटाई गई।

नीरव पटेल ने आरंभ से ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए कविता विधा को एक माध्यम के रूप में अपनाया। उनका गुजराती में प्रकाशित 'बहिष्कृत फूल' कविता संग्रह आज भी अपनी एक अलग पहचान रखता है। इसके अलावा उनके 'बर्निंग फ्रॉम बोथ एण्ड्स' और 'व्हाट डीड आई डू टू बी सो ब्लैक एण्ड ब्लू' यह अंग्रेजी संग्रह प्रकाशित है। इन अंग्रेजी कविता संग्रहों में विद्रोह के ऐसे स्वर मुखरित हुए है, जिससे अभिजात्य पटल पर हलचल सी मच गई थी। उनके लेखन की विशेषता उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता से निकलती है। उनका कहना है कि, 'मैं चाहता हूँ कि आप मेरी रचनाओं को मात्र पाठक बनकर मत पढ़िए बल्कि आप मेरे सहभाव के साथी बने। शायद तभी मेरा दर्द कम हो सकता है।' नीरव पटेल की काव्य यात्रा निरंतर विकसित होती रही है। उनकी आरंभिक कविताओं में वेदना और वंचना का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने दलित जीवन की वास्तविकता और जिजीविषा को अपने क्रोध की आँच में तपा कर शब्दों में ढाल दिया है। उनकी परवर्ती कविताओं में चिंतन का तत्व प्रौढ़ होता गया है। उनके द्वारा लिखित 'माँ!। मैं भला कि मेरा भाई' कविता में चिंतन की प्रौढता के दर्शन होते हैं।

4.2.2 जयंत परमार

जयंत परमार उर्दू एवं गुजराती दोनों भाषाओं के चर्चित कवि है। वे दोनों भाषाओं में समान रूप से लेखन करते रहे हैं। इनका जन्म 11 अक्तूबर, 1940 को अहमदाबाद में हुआ था। उनका बचपन अहमदाबाद के मुस्लिम बहुल इलाके में बिता। इस इलाके को अक्सर दीवारों के शहर के नाम से जाना जाता है। जयंत परमार को बाल्यकाल में ही दलित जीवन के त्रासद अनुभवों से गुजरना पड़ा। वे जीवन को बेहतर बनाने के लिए वे उच्चजातीय समाज के एक पेंटर के यहाँ पेंटिग का कार्य करने लगे। इस कार्य के दौरान एक दिन उन्होंने देखा कि दुकान का मालिक उनके द्वारा बनाई गई पेंटिंग को अलग से रखता है। मालिक को लगता था कि पेंटिंग की गई फ्रेम को जयंत परमार द्वारा छूने पर उनका धर्म भ्रष्ट होता है। छुआछूत के इस व्यवहार से जयंत परमार व्यथित होते थे,

लेकिन जीविका चलाने के लिए उनके पास कोई और साधन नहीं था। इसलिए जैसे थे कि स्थिति में उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा। छुआछूत और भेदभाव के इन व्यवहारों को उन्होंने कविता में अभिव्यक्त करना आरंभ किया। उन्होंने दलित जीवन के कठोर संघर्ष, व्यथाएँ और उत्पीडन को गुजराती के साथ–साथ उर्दू में भी कविताएँ लिखकर अभिव्यक्त किया है' उर्दू में उनके 'और' (1999), 'पेंसिल और दूसरी नज्में' (2006), तथा 'मानिन्द' (2007) काव्य संग्रह प्रकाशित है।

जयंत परमार बहुमुखी प्रतिभा और व्यक्तित्व के धनी है। वे दलित जीवन और अल्पसंख्यक मुस्लिम समाज के बीच सेतु बनकर उनके दुःख दर्द को कविताओं में प्रस्तुत करते हैं। जयंत परमार को अभी तक कई पुरस्कारों से नवाजा गया है। उन्हें 'पेंसिल और दूसरी नज्में' इस उर्दू संग्रह के लिए सन् 2008 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। इसके अलावा उन्हें भाषा भारती सम्मान, गुजरात उर्दू साहित्य अकादमी अवार्ड, कुमार पाशी अवार्ड, भारतीय दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि से भी पुरस्कृत किया गया है। उनकी कई कविताएँ अंग्रेजी, कन्नड़, बंगला, तेलुगु, मराठी, पंजाबी आदि भाषाओं में अनूदित है।

4.2.3 दलपत चौहान

दलपत चौहान गुजराती दलित साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकार है। इनका जन्म 10 अप्रैल, 1940 को ग्राम मंडाली, जिला मेहसाना (गुजरात) में हुआ था। इन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की और बाद में सरकारी नौकरी से संलग्न हुए। दलपत चौहान की कई रचनाएँ गुजराती भाषा में प्रकाशित है। इनके हिन्दी में अनूदित होकर प्रकशित हुए 'तो फिर कहाँ है सूरज' और 'दुदुंभि' चर्चित कविता संग्रह है। इनके 'मुंझारों' और 'डर' कहानी संग्रह प्रकाशित है। इन्होंने 'मुलुक', 'गिद्ध' और 'भोर' उपन्यासों का भी सृजन किया है। इसके अलावा 'प्रतियोगिता' (एकांकी संग्रह) तथा 'अनार्यवर्त' (नाटक संग्रह) प्रकाशित है। इनकी कई रचनाएँ विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी है।

दलपत चौहान गुजरात में दलित साहित्य को विकसित करने वाले शीर्षस्थ लेखक है। वे 'दलित पैंथर' आंदोलन से लेकर वर्तमान समय के विभिन्न दलित आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। उन्होंने गुजरात प्रदेश में साहित्य और सामाजिक आंदोलनों में सक्रीय रहते हुए दलित जीवन से जुड़े तमाम प्रश्नों को अपने लेखन में अभिव्यक्त किया है। दलपत चौहान को कविता, कहानी, एकांकी और रेडियो नाटक के लिए अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं। इन्हें गुजरात सरकार अनुसूचित जाति कल्याण और अधिकारिता विभाग द्वारा संत श्री नरसी मेहता साहित्य सम्मान (2002) से नवाजा गया है।

4.3 गुजराती में 'दलित' शब्द का प्रयोग और दलित कविता की आरंभिक पृष्ठभूमि

गुजरात प्रदेश में जातीय दमन के विरोध का पहला स्वर भक्ति काल में सुनाई दिया। भक्ति काल के संत कवियों ने दास्य जीवन की वेदना और पीड़ा को भक्ति के माध्यम से व्यक्त किया है। भक्ति काल के संत कवि दादू दयाल, नरसी मेहता और मीराबाई ने निर्गुण भक्ति को अपनाया और निम्न जातियों के पक्ष में वैचारिक जागशति की है। इन संत कवियों के समतामूलक विचारों ने गुजराती लोक मानस को प्रभावित किया। इनके वचनों में मानवीय मूल्यों को स्थपित करने का वैचारिक पक्ष प्रबल रहा है। गुजराती दलित साहित्य भक्तिकालीन संत कवियों की विरासत से संबंध स्थापित करता है। आधुनिक काल में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी ने दलितोद्धार के लिए कार्य किए। उन्होंने समाज

में स्थित जातिभेद, छुआछूत, बहिष्कार की भावना से मुक्त होने का आह्वान किया था। साथ ही स्वाधीनता आंदोलन में दलित जातियों को जोड़ने के प्रयास किए। इससे भी दलित समाज में चेतना जागृत होती गई। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही दलित मुक्ति के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आंदोलन चला रहे थे। गांधीजी और डॉ. आंबेडकर के बीच सामाजिक सुधार और दलितों की उन्नति के मुद्दों को लेकर कई बार वैचारिक बहसें हुई। डॉ. आंबेडकर ने गांधीजी के दलितोद्धार के विचारों की बड़ी सतर्कता और तार्किक ढंग से आलोचना की। इससे हुआ यह कि गुजरात प्रदेश में शिक्षित दलित वर्ग के भीतर नई चेतना उत्पन्न हुई और यह वर्ग सामाजिक परिवर्तन के लिए लोकतांत्रिक संघर्ष की दिशा में अग्रषित हुआ। दलित समाज स्वाधीनता आंदोलन में सक्रीय होने के साथ–साथ अपने शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के लिए स्वतंत्र रूप से तत्पर हुआ। दलित समाज यह जान गया था कि महात्मा गांधी दलितोद्धार के लिए कार्य कर रहे थे, लेकिन तत्कालीन समय ने उन्होंने दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयुक्त किया था। इस शब्द को लेकर गुजराती दलित साहित्य में वैचारिक बहसें हुईं। आत्मसम्मान, मानवीय गरिमा और पहचान के सवाल को लेकर हुई इन बहसों से दलित वर्ग में नई चेतना का विकास हुआ। शिक्षित दलित वर्ग ने गांधीजी द्वारा प्रयुक्त 'हरिजन' इस शब्द को नकारा। शिक्षित दलितों का मानना था कि 'हरिजन' कहने से दलित व्यक्ति के प्रति मानवीय गरिमा से युक्त व्यवहार नहीं होता है। इससे दलित को निम्न जातीय होने का बार–बार अहसास कराया जाता है। जिससे दलित मानस उद्वेलित होता है। यह शब्द मानसिक प्रताडना और अवमानना सूचक है। इस शब्द के प्रयोग से दलितों के आत्मसम्मान और स्वाभिमान पर आघात होते हैं। मूलतः 'हरिजन' शब्द का देवदासी प्रथा के संदर्भ में एक आपत्तिजनक आशय है। देवदासी प्रथा के अंतर्गत विवाह संस्था के अभाव में देवदासियों को जो संताने पैदा होती थी, उन्हें 'हरिजन' कहने का प्रचलन भारतीय समाज में रहा है। देवदासियों के संतानों को सार्वजनिक रूप से ईश्वर के बच्चे माना जाता था। धार्मिक, सामाजिक और कानूनी दर्जे से वंचित इन संतानों की गणना एक प्रकार से मंदिर की संपत्ति के रूप में ही कर ली जाती थी। आजादी के बाद 'हरिजन' शब्द को स्वीकृति देना और उसका प्रयोग करना संवैधानिक और कानूनन गुनाह माना गया है। अतः पहचान के इस सवाल ने गुजरात के वंचित एवं शोषित लोगों के बीच हलचल मचा दी। गांधीजी द्वारा दलितों को दी जा रही 'हरिजन' इस पहचान को गुजराती दलित रचनाकारों द्वारा खारिज किया गया और 'दलित' शब्द का चलन शुरू हुआ।

आजादी के बाद गुजराती दलित लेखकों का मराठी दलित लेखकों से संपर्क स्थापित होने लगा था। महाराष्ट्र में जब दलित पैंथर आंदोलन के साथ–साथ दलित साहित्य अपनी मुक्कमल उपस्थिति दर्ज कर रहा था, उन्हीं दिनों गुजरात के कई दलित रचनाकार दलित पैंथर आंदोलन से जुड़ गए थे। गुजरात में दलित पैंथर का गठन रमेश चंद्र परमार के नेतृत्व में हुआ। गुजरात में दलित पैंथर से जुड़े लेखकों ने 'आक्रोश' पत्रिका शुरू की। 'आक्रोश' पत्रिका का 14 अप्रैल, 1978 को गुजराती दलित कविता पर केंद्रित विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसे ही मोठे तौर पर गुजराती दलित साहित्य का प्रस्थान बिंदु माना जाता है। इस अंक के संपादकीय में दलित कवियों के संदर्भ में यह घोषणा की गई है कि, "हमारे पास कविता और उसके सौन्दर्य की कोई परंपरा नहीं है। जिसे संस्कृत में काव्य हेतु कहते हैं, उससे ये कवि दूर–दूर तक परिचित नहीं थे। इन कवियों में किसी को कविता के अभ्यास अथवा इसकी विरासत से ज्यादा कोई सरोकार नहीं था।" इस अंक में प्रकाशित दलित कवियों की काव्यात्मक अनुभूतियाँ और विचार तत्व उन्हें तथाकथित मुख्यधारा की गुजराती कविता से अलग कर देता हैं। जिस तरह मराठी में 'अस्मितादर्श' पत्रिका ने दलित साहित्य को स्थापित किया, ठीक उसी तरह 'आक्रोश' पत्रिका ने गुजराती दलित साहित्य, विशेषतः दलित कविता को नई दिशा प्रदान की। इस पत्रिका

में नीरव पटेल, रमेश चौहान, हरीश मंगलम, प्रवीन गडवी, साहिल परमार, जयंत परमार, दलपत चौहान, भी. न. वनकर, राजू सोलंकी तथा जी. वनकर आदि कवियों की कविताएँ लगातार प्रकाशित हुई। आगे इन्हीं कवियों ने कविता ही नहीं बल्कि समूचे गुजराती दलित साहित्य को नया रूप दिया। इनकी कविताएँ 'काले सूरज', 'दलित शक्ति', 'दलित चेतना', 'अधिकार', 'दिशा', 'समाज मित्र', 'नयामार्ग' तथा 'हयाती' आदि पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। इन पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित दलित कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा रचनात्मकता के नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।

गुजराती में दलित जीवन के संघर्ष और व्यथाओं को मुखर करने वाली अनेक उत्कृष्ट कविताएँ मिलती है। दलित कवियों ने आजीविका से संबंधित समस्याओं को निजी भाषा में संवेदनात्मक धरातल पर उत्कृष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया है। गुजराती दलित कविता में परिवेश की ताजगी और जीवन संवेदनाओं की सूक्ष्मता है। दलित रचनाकारों ने सामाजिक–सांस्कृतिक विषमता, अन्याय–अत्याचार, आक्रोश, विद्रोह, जातिवाद, आरक्षण, भूमंडलीकरण के दबाव, सांम्प्रदायिकता तथा दलितों का विस्थापन जैसे विषयों पर कविताएँ लिखी है। गुजराती दलित कविताएँ जितनी चिंतनप्रधान, वैचारिक और समजाभिमुख है उतनी ही कलात्मक भी है। इसलिए नवोन्मेष का अनुभव और अहसास कराके परिवर्तनकामी स्वर मुखर करने वाली कविताओं के रूप में गुजराती दलित कविता के महत्त्व और योगदान को रेखांकित किया जाता है।

गुजराती दलित कविता में मानवीय मूल्यों का सृजन है। इस सृजन में विचार और संवेदना का मिला–जुला स्वरूप दिखाई देता है। यह स्वरूप–तत्व नीरव पटेल, जयंत परमार और दलपत चौहान की कविताओं में झलकता है। यह कवि सामाज में जीवन व्यतीत करते समय दलित को जिन तकलीफों एवं मानसिक आघातों से गुजरना पड़ता है, उस जीवन से जुड़े कठोर अनुभव, शोषण– उत्पीड़न और सामाजिक यथार्थ को दर्ज करते हैं। अतः इन कवियों की कविताओं का पाठावलोकन और विश्लेषण आगे हैं।

4.4 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता का पाठावलोकन

नीरव पटेल की कविता 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' एक महत्त्वपूर्ण कविता है। यह कविता दलित समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करती है। इस कविता की बुनावट में तथ्य अधिक है, लेकिन यह तथ्य कविता के क्षेत्र में प्रचलित पुरानी मान्यताओं को तोड़ देते हैं। कविता की संवेदना और कवि का काव्य विवेक सामाजिक परिस्थितियों से उपजा है। कवि ने दलित समाज के यथार्थ और आदर्श को बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया है। कविता की बुनावट में संवादात्मकता एवं तार्किकता है। इसके अलावा सामाजिक जीवन पर सवालिया निशान लगाते हुए दलितों के अतीत, वर्तमान और भविष्य पर भाष्य किया है। 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' कविता निम्नानुसार है–

माँ! मैं भला कि मेरा भाई

तुम्हारी चमर कौं-कौं से मैं तंग आ गई
तुमने तो राग बिना ही नौटंकी कर रखी है
तुम्हारे बाबा क्या गए
तुमने मेरा घर पतुरिया का सराय बना दिया

माँ! ये मेहरिये बहुत फूल गए हैं
माँ! ये सुतरिये बहुत अधा गए हैं
माँ! ये वाल्मीकि वे बहुत बहक गए हें

वह मिनिस्टर बन गया है
और मुझे मेयर भी नहीं बनने देता
वह डॉक्टर बन गया है
और मुझे कम्पाउंडर भी नहीं बनने देता

वह अफसर बन गया है
और मुझे चपरासी भी नहीं बनने देता
महाजन में भी वह
कांग्रेस में भी वह
जनता में भी वह
भारतीय जनता में भी वह
कविता में भी वह
इतिहास में भी वह
चीता भी उसका
हाथी भी उसका
'कॉलरशीप' (स्कालशिप) भी उसकी
सबसीडी भी उसकी
लोन भी उसका
वजीफा भी उसका
मेरी तो झोली खाली की खाली

वह तो मेरा भाई है
या पराभव का दुश्मन?
उसके बच्चे तो सब हीरो बने फिरते
मेरे मैला ढोते, कचरा सुलटते
यह कैसा इंसाफ है माँ
यह तो सरासर बेइमानी है माँ
मुझे तो मेरे बाबा की वसीयत का
इत्ता सा भाग नहीं मिला
जैसे की मैं दुजारू
तू भी बहुत बेइमानी करती है माँ

वह तो अब मुझे भाई ही नहीं समझता
उसने तो अपनी भजन-मंडली भी अलग कर ली
उसने तो अपनी महिला-मंडी भी अलग कर ली
उसने तो अपनी व्यवसाय-मंडली भी अलग कर ली
वह तो काशी के बामन-बनिया की तरह
अपने पड़ोस में भी मुझे रहने नहीं देता
वह तो अपने को सेठ-साहूकार समझने लगा है।

तुने कैसा न्याय किया है माँ?
उसको तकली दी और मुझे तानपुरा
उसको पोथी-पत्रा दिया और मुझे पिपिहरी
उसको कुंड दिया और मुझे छौना?

वह तो हमें छोड़ सवर्णों में घुस गया है
वह तो संघ में भी हे और स्वाध्याय में भी
अब तू ही बोल माँ, मैं भला कि मेरा भाई?

तु?और तू? और वह? और वह?
तू मुआ ढेड ओर वह नासपीटा चमार
तू मुआ गरौंडा और वह नासपीटा ओलगणा
तू मुआ तूरी और वह नासपीटा ओलगणा
तू मुआ ढेड खिस्ता और वह नासपीटा तीरगर
तुम्हारे अकारण के झगड़ों से मैं तंग आ गई
तुमने तो अपने बाबा का नाम डुबो दिया
और मेरा दूध लजाया
भूल गए कल तक सबके गले में लटकती थी मेलिया मटकी
और पीछे लटकता था झाड़ू?
कल तक सब मुर्दार खाते थे
और आज मुछल्ले मरद बन गए?

आज तू दो पैसे वाला हो गया
और गोश्त खाने लगा तो गुरूर करता है
और तेरे पास दो-पैसा ज्यादा
तो मुर्दार खाने वाले को भाई ही नहीं समझता?

मेहरिया पहनता था मादरपाट की पोतनी धोती
सुतरिया पहनता था मादरपाट का चीथड़ा कमीज
तू पकड़ता था पूंछ
और तू पकड़ता था टांग
हम सब टंगिया कर लाते थे मुर्दा ढोर कंकाल
और गीदड़ों की तरह जश्न मनाते थे

वो तो अपने बुरे दिन थे
किसी ने पकड़ी कुदाल
तो किसी ने पकड़ी कुल्हाड़ी
किसी ने पकड़ी झाडु
तो किसी ने करघा
तुम भूल गए लोग हमें कितना सताते थे
और आज भी सताते हैं
उनके लिए तो तुम आज भी
ढेडों की औलाद हो-

भले ही तुम अपने की नीरव पटेल कह लो
या तुम अपने गौतम चक्रवर्ती कह लो
या तुम अपने को सेम्युअल बेकन कह-लो
कहा मैं ज्ञानी
मैं गुणियल

मैं सयाना
कहो तु गधा-तू-खच्चर-तू मूरख
इठलाओ कि जिस सूत के तांतो के आज़ादी दी
उसे मैंने बुना था

इतराओ कि हरियाली क्रांति को सींचने वाले मशक
की खाल मैंने उतारी थी
मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि
तुम माँ-जने भाई हो
सब एक ही पेड़ की जड़े हो
एक चने की दो दाल जैसे
कल तक मैं सब को आटा खिलाती थी
और आज तुमने बंदरबाट का खेल बनाया
आरक्षण की जूठन के लिए
तुम भाई-भाई भौंकने लगे
एक-दूसरे को काट खाने लगे।

तुम भूल गए कबीर दादा को
तुम भूल गए रैदास दादा को
तुम भूल गए माया दादा को
और इतनी जल्दी भूल गए 'बाबा' की बात?
तुम सयाने हो
तो अपने अनपढ़ भाई का ख्याल रखो
तुम बड़े हो
तो थोड़ा बड़प्पन दिखाओ
तुम तगड़े हो
तो दुबले को थोड़ा-ज्यादा दो
सब हिलमिल के रहो
सब मिलजुल के रहो
भेड़िये तो ताक में हैं
तुम्हें दोबारा जंगल में खदेड़ देंगे
तुम दर-दर भटकोगे और तबाह हो जाओगे
तुम्हें वे फिर से नीची मुंडी चलाएंगे
अपने बाबा की वसीयत तुम फिर से पढ़ो
और आज के बाद कभी मत पूछो
कि मैं बड़ा कि मेरा भाई
तू मुआ ढेड और वो नासपीटा चमार!

4.5 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता का विश्लेषण

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जाति व्यवस्था और सामाजिक भेदभाव के खिलाफ आंदोलन चलाया था। दलितों की उन्नति और विकास के लिए नई राह चुनने का आह्वान किया था। उनके विचार और आंदोलन से प्रेरित होकर दलित समाज प्रगति की दिशा में अग्रषित हुआ। लेकिन इस नई राह पर आगे बढ़ते समय दलित समाज के ही कुछ

परिवार और कुछ जातियाँ विकास की दिशा में आगे निकल गई और कुछ परिवार और जातियाँ पीछे छुट गई। आजादी के बाद हिन्दू समाज के विचारकों ने दलित समाज में उत्पन्न हुई विषमतामूलक परिस्थितियों का हथियार की तरह इस्तेमाल करना आरंभ किया। जिससे दलित आंदोलन कमजोर होने लगा और आर्थिक विषमता के आधार पर दलित समाज में दरारे पैदा होती गई। इन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नीरव पटेल ने दलित जीवन के अंतर्विरोधों को अपनी कविता में उजागर किया है। नीरव पटेल कविता के द्वारा दलित जातियों के भीतर समानता और भाईचारे की भावना पर जोर देते हैं। वे 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' कविता में यह दर्शाते हैं कि, दलित समाज ने अपनी जीवन दशाओं में सुधार के लिए लम्बे समय तक संघर्ष किया। इस संघर्ष के प्रेरणा स्त्रोत डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर रहे हैं। डॉ. आंबेडकर ने दलितों की उन्नति के लिए अथक प्रयास किए। उन्होंने अपने अंतिम समय में दलित समाज को संदेश देते हुए कहा था कि, 'मैंने दलित मुक्ति आंदोलन के इस परिवर्तनवादी रथ को बड़ी मेहनत और कठिन संघर्ष से यहाँ तक लाया है। अब आप का यह कर्तव्य है कि आप इसे और आगे ले जाए। आप अगर इसे आगे बढ़ाने में असमर्थ रहे तो इसे यहीं पर छोड़ दो, लेकिन किसी भी हालात में इसे पीछे मत जाने दीजिए।' तत्कालीन समय में डॉ. आंबेडकर के विराट व्यक्तित्व के आगे दलित समाज के अपने आपसी मतभेद नदारद रहे। सभी उनके इशारे पर कंधे–से–कंधा मिला कर संघर्षरत् रहें। अपितु डॉ. आंबेडकर के परिनिर्वाण के बाद दलित जातियों के आपसी मतभेद सतह पर आ गए। जो लोग कल तक एक–दूसरे के सुख–दुःख के साझेदार थे, उनमें धीरे–धीरे आंतरिक संघर्ष और आपसी कलह शुरू हुए। दलित जातियों के भीतर ही राजनीतिक वर्चस्व की लालसा पनपती गई। दलित आंदोलन के नेता अपने स्वार्थ के लिए गुटबाजी और अवसरवादी राजनीति के पीछे लामबंद होते गए। इसके दूरगामी असर दलित समाज पर हुए। दलितों के परिवर्तनकामी संघर्ष एवं आंदोलनों में दरारें पड़ने लगी। दलित जातियों के भीतर सामाजिक विभाजन होने लगा। इसका फायदा मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियाँ, पूँजीपति, सामंत वर्ग और ब्राह्मणवादियों ने उठाया। इन स्थितियों में दलित मुक्ति आंदोलन के प्रति गहरी आस्था रखने वाले शिक्षित वर्ग की वेदना बढ़ गई। इन सभी परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए नीरव पटेल सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों के विरुद्ध प्रतिरोध दर्ज करते हैं।

4.5.1 दलित जातियों के सामाजिक अंतर्विरोध

आजादी के बाद लोकतंत्र को स्वीकृत किया गया। सभी के लिए समान अवसर मुहैया कराने के वादे किए गए। अपितु आजाद भारत में समाज के अभिजात्य वर्ग का ही वर्चस्व कायम होता गया। देश की जनता के साथ–साथ दलित वर्ग ने भी जो उन्नति के सपने देखे, वे सपने धीरे–धीरे टूटते गए। दलित समाज में से जो मध्यवर्ग उत्पन्न हुआ, उसने अपनी थोड़ी–बहुत उन्नति होने के बाद अपने समाज की दुर्दशा को पीछे मुड़कर देखना नहीं चाहा। अभी तक जिन लोगों को आजादी के बाद अवसर प्राप्त हुए, वे लोग दूसरों को अवसर देने के लिए आनाकानी करते रहे हैं। इन स्थितियों का वर्णन 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' कविता में किया गया हैं। कविता के आरंभ में माँ और बेटे के संवाद को सृजित करते हुए दलित समाज में उत्पन्न हुए सामाजिक अंतर्विरोध और आपसी कलह की स्थिति को दर्शाया है। पंक्तियाँ है–

"तुम्हारी चमर कौं-कौं से मैं तंग आ गई
तुमने तो राग बिना ही नौटंकी कर रखी है
तुम्हारे बाबा क्या गए
तुमने मेरा घर पतुरिया का सराय बना दिया
माँ! ये मेहरिये बहुत फूल गए हैं

माँ! ये सुतरिये बहुत अधा गए हैं
माँ! ये वाल्मीकि बहुत बहक गए हैं

वह मिनिस्टर बन गया है
और मुझे मेयर भी नहीं बनने देता
वह डॉक्टर बन गया है
और मुझे कम्पाउंडर भी नहीं बनने देता
वह अफसर बन गया है
और मुझे चपरासी भी नहीं बनने देता"

उक्त पंक्तियों में नीरव पटेल दलित जातियों के सामाजिक अंतर्विरोधों से रूबरू कराते हैं। माँ और बेटे के संवाद के जरिये शिक्षित बेरोजगार युवक की व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। सामान्य अनुमानों से बेटा अपनी माँ से कहता है कि सामाजिक जीवन में यह किस तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई है, जिसमें एक दलित जाति विकास की ओर उन्मुख है और दूसरी जाति के दलित अपने मन में विकास स्वप्न लेकर व्यथित है। दलित समाज की ही कुछ जातियाँ एवं कुछ परिवार शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी हुए और अपनी मेहनत से उन्नति करते रहे। लेकिन उन्नति के शिखर पर पहुँचने पर वे अपना सामाजिक दायित्व भूल गए। इसे उजागर करते हुए कवि ने जो डॉक्टर, मेयर, मिनिस्टर बन गए है, उनकी अवसरवादिता पर सवाल खड़े किए हैं। इन्होंने अपनी अवसरवादी नीतियों के कारण बाद की पीढ़ी के शिक्षित युवाओं को कम्पाउंडर तथा चपरासी तक बनने नहीं दिया। इससे हुआ यह कि निम्न स्तरीय दलित की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों में बदलाव नहीं हो सका। जीवन में बदलाव न होने के कारण वह दुःख–दर्द और निराशा के अंधकार में ही घिरा रहा। आर्थिक अवसाद और सामाजिक शोषण के बीच उलझे हुए निम्न स्तरीय दलित जीवन की व्यथाएँ और विडम्बनाओं को समझने की आवश्यकता है।

4.5.2 सुविधाभोगी दलित मानस की आलोचना

सामाजिक जीवन की यह विडम्बना है कि अभिजात्य वर्ग ने पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपना सामाजिक वर्चस्व कायम किया हुआ है। इस अभिजात्य वर्ग के संस्कार कुछ मध्यवर्गीय दलितों ने भी अपना लिए है। वहीं दूसरा निम्न स्तरीय दलित वर्ग आर्थिक साधनों से वंचित रहा है। इस विषम सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में निम्न स्तरीय गरीब दलित व्यक्ति अत्यंत व्यथित है। उसकी व्यथा को दर्ज करते हुए कवि आगे लिखते हैं–

"महाजन में भी वह
कांग्रेस में भी वह
जनता में भी वह
भारतीय जनता में भी वह
कविता में भी वह
इतिहास में भी वह
चीता भी उसका
हाथी भी उसका
'कॉलरशिप' (स्कॉलरशिप) भी उसकी
सबसीडी भी उसकी
लोन भी उसका
वजीफा भी उसका
मेरी तो झोली खाली की खाली"

स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन में आर्थिक रूप से संपन्न गैर–दलितों का वर्चस्व कायम है। इनके साथ–साथ आर्थिक उन्नति कर चुका और ऊँचे पद पर पहुँचा दलित वर्ग का एक तबका भी अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को भूल चुका है। वह राजनीतिक पार्टियों के पीछे लामबंद है, जहाँ पर उसे कुछ सुविधाएँ मिलने लगती है, उसे वह प्राप्त करने में लगा रहता है। इससे सभी समुदायों का समुचित विकास नहीं हो पाता है। आजादी के बाद समाज में जो विकास की नीतियाँ तय हुई, उसका उचित लाभ निम्नस्तरीय गरीब दलित परिवारों को नहीं हुआ। सुविधाभोगी मध्यवर्गीय दलितों की चालाकियों की वजह से निम्नस्तरीय गरीब दलितों की बहुत बड़ी आबादी अभी भी आजीविका के साधनों से वंचित रही है। इसे नीरव पटेल ने बड़ी शिद्दत और साहस से कविता में अभिव्यक्त करके अभिजात्य वर्ग के संस्कारों को आत्मसात करने वाले मध्यवर्गीय दलित मानस की आलोचना की है।

नीरव पटेल कविता के माध्यम से अभावग्रस्त दलित जीवन की विडम्बनाएँ, आर्थिक विपन्नता, गरीबी और अवसाद को यथार्थ के धरातल पर उजागर करते हैं। समाज में भाईचारे की भावना न होने पर इंसाफ की अपेक्षा से सवाल करते दलित की वेदना और आंतरिक व्यथाओं को उजागर करते हैं। इसे कविता में तुलनात्मक रूप से निम्न पंक्तियों में दर्शाया गया है–

"वह तो मेरा भाई है
या पराभव का दुश्मन?
उसके बच्चे तो सब हीरो बने फिरते
मेरे मैला ढोते, कचरा सुलटते
यह कैसा इंसाफ है माँ
यह तो सरासर बेइमानी है माँ
मुझे तो मेरे बाबा की वसीयत का
इत्ता सा भाग नहीं मिला
जैसे की मैं दुजारू
तू भी बहुत बेइमानी करती है माँ"

यहाँ दलित व्यक्ति के मन की व्यथाओं को मुखर करने के साथ–साथ कवि ने सामाजिक विडंबना एवं विसंगतियों को दर्शाया है। प्रतिष्ठा प्राप्त दलित ने अपने सामाजिक दायित्व से हटकर अपने–आप को सीमित कर लिया है। इससे अभावग्रस्त दलित का मन कचोटता है। अर्थहीन और उपेक्षित जीवन व्यतीत करने वाले दलित को लगता है कि, उसके साथ छल–कपट हुआ है।

4.5.3 दोहरे व्यवहार एवं सामाजिक व्यक्तित्व में बदलाव

समाज में दो दलित जातियों के भीतर श्रेष्ठता और जातीय संस्कृति का गर्व पनपता है। असल में जाति व्यवस्था की यह विशेषता है कि, समाज में प्रत्येक जाति अपने आप को ऊँचा साबित करने के लिए दूसरी जाति को निम्न दिखाने की कोशिश करती है। इसके लिए पारिवारिक और धार्मिक रूढ़ियों की दुहाई दी जाती है। दलित समाज का शिक्षित व्यक्ति जब अच्छे पद पर पहुँचता है, तब उसके जीवन में प्रतिष्ठा का अहं जागृत होने लगता है। वह अपनी ही बिरादरी के भीतर अपने आप को अलग दिखाने की कोशिश करता है। जिस समाज से वह ऊपर उठा है, उस समाज से अलग होने लगता है। कविता में व्यक्तित्व में हुए बदलाव की स्थितियों का चित्रण है–

"वह तो अब मुझे भाई ही नहीं समझता
उसने तो अपनी भजन-मंडली भी अलग कर ली
उसने तो अपनी महिला-मंडली भी अलग कर ली
उसने तो अपनी व्यवसाय-मंडली भी अलग कर ली
वह तो काशी के बामन-बनिया की तरह
अपने पड़ोस में भी मुझे रहने नहीं देता
वह तो अपने को सेठ-साहूकार समझने लगा है"

सामाजिक जीवन की यह विडम्बना है कि, आर्थिक उन्नति होने पर व्यक्ति के आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान, व्यवसाय एवं व्यवहार बदल जाते हैं। दलित समाज भी इससे मुक्त नहीं है। जिस दलित व्यक्ति का थोड़ा–बहुत आर्थिक विकास हो जाता है, वह धीरे–धीरे अपनी ही बिरादरियों के भीतर अपने आप को ऊँचा समझने लगता है। उसका पूरा सामाजिक चरित्र वर्ग संरचना में बदल जाता है। उसके व्यक्तित्व में वर्ग चेतना पनपने लगती है और वह अपने भाई–बंधुओं के साथ भेदभाव एवं दोहरे व्यवहार करने लगता है। इन दोहरे व्यवहारों को भजन मंडली तथा व्यवसाय मंडली अलग करने की मानसिकता और अपने को सेठ–साहूकार समझने की प्रवृति को चिह्नित करके बताया गया है। कवि का कहना कुछ हद तक सही है, क्योंकि आर्थिक स्वार्थ और प्रतिष्ठा के खातिर दलित समाज में जो दोहराव उत्पन्न हुए, उससे व्यक्ति सामाजिक प्रतिबद्धता और समानता की भावना से विमुख होने लगा है। मनुष्य में खंडित मानसिकता और विचलन की स्थिति पैदा हुई है। इन परिस्थितियों में कवि को लगता है–

"तुने कैसा न्याय किया है माँ?
उसको तकली दी और मुझे तानपुरा
उसको पोथी-पत्रा दिया और मुझे पिपिहरी
उसको कुंड दिया और मुझे छौना?
वह तो हमें छोड़ सवर्णों में घुस गया है
वह तो संघ में भी है और स्वाध्याय में भी
अब तू ही बोल माँ, मैं भला कि मेरा भाई?"

दलित जातियों के भीतर हुए बदलाव को दर्शाने का कवि का उद्देश्य है कि, उनके आपसी कलह खत्म हो जाए। उनमें सामाजिक सौहार्द स्थापित हो। वे सामाजिक परिवर्तन के लिए संगठित हो जाए। दलित समाज अपनी ऐतिहासिक विरासत को जान कर संघर्ष करें। इसलिए कवि माँ के द्वारा चेतना पैदा करना चाहते है। लिखते हैं–

"तू? और तू? और वह? और वह?
तू मुआ ढेड और वह नासपीटा चमार
तू मुआ गरौंडा और वह नासपीटा ओलगणा
तू मुआ तूरी और वह नासपीटा ओलगणा
तू मुआ ढेड खिस्ता और वह नासपीटा तीरगर
तुम्हारे अकारण के झगड़ों से मैं तंग आ गई
तुमने तो अपने बाबा का नाम डुबो दिया
और मेरा दूध लजाया"

यहाँ सामाजिक परिवर्तन के सपने देखने वाली माँ की व्यथाओं को दर्शाया है। माँ को लगता है कि दलितों के आपसी कलहों की वजह से दलित आंदोलन बिखरने लगा है। भाईचारे की भावना खत्म होने लगी है। जाहिर है कि जहाँ भाईचारा नहीं होगा वहाँ सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक दलित कवि जिस तरह

भाईचारे की स्थापना के लिए सक्रीय है, उसी तरह नीरव पटेल भी चेतना पैदा करते हैं। इसके लिए दलित जीवन के यथार्थ को पूरी निष्ठा से दर्ज करते हैं।

4.5.4 सामाजिक परिवर्तन का स्वप्न

नीरव पटेल दलित जीवन में उत्पन्न हुए आंतरिक कलह को खत्म करने के लिए एक नया विचार प्रस्तुत करते हैं। माँ के द्वारा अतीत की जीवन दशाओं से परिचित कराते हैं और इतिहास से सबक लेकर वर्तमान एवं भविष्य को बदलने का स्वन देखते हैं। यह परिवर्तन का स्वप्न कविता के भीतर दलित आंदोलन की ऐतिहासिकता, जीवन की घटनाएँ, सामाजिक तथ्य, चिर–परिचित दृश्य और शोषण के संदर्भों को दर्शाते हुए देखा गया है। कवि ने परिवर्तन के स्वप्न को यथार्थ में बदलने के लिए माँ के द्वारा अतीत की अमानवीय जीवन दशाओं से परिचित किया है। पंक्तियाँ है–

"भूल गए कल तक सबके गले में लटकती थी मेलिया मटकी
और पीछे लटकता था झाडू?
कल तक सब मुर्दार खाते थे
और आज मुछल्ले मरद बन गए?"
आज तू दो पैसे वाला हो गया
और गोश्त खाने लगा तो गुरूर करता है
और तेरे पास दो-पैसा ज्यादा
तो मुर्दार खाने वाले को भाई ही नहीं समझता?
मेहरिया पहनता था मादरपाट की पोतनी धोती
सुतरिया पहनता था मादरपाट का चीथड़ा कमीज
तू पकड़ता था पूंछ
और तू पकड़ता था टांग
हम सब टंगिया कर लाते थे मुर्दा ढोर कंकाल
और गीदड़ों की तरह जश्न मनाते थे

वो तो अपने बुरे दिन थे
किसी ने पकड़ी कुदाल
तो किसी ने पकड़ी कुल्हाड़ी
किसी ने पकड़ी झाडु
तो किसी ने करघा
तुम भूल गए लोग हमें कितना सताते थे
और आज भी सताते हैं
उनके लिए तो तुम आज भी
ढेडों की औलाद हो "

इतिहास में दलितों का जीवन बड़ा जटिल रहा है। उन्हें निम्न दर्जे के कार्य करने पड़ते थे। सामंती मानसिकता के सवर्ण समाज द्वारा पग–पग पर शोषित किया जाता था। यहीं स्थिति आज भी बरकरार है। वर्तमान में शोषण तो हो रहा है, लेकिन शोषण करने के तरीके बदल गए है। पहले सीधे–सीधे शोषण होता था और शोषण करने वाला जो वर्ग है वह दिखाई देता था। आज शोषण करने वाला दिखाई नहीं देता है, लेकिन सामाजिक–आर्थिक शोषण जारी है। सामाजिक गुलामी से दलित समाज पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका है। शोषण से मुक्त होने की चाहत कवि द्वारा प्रस्तुत हुई है। पंक्तियाँ है–

"भले ही तुम अपने को नीरव पटेल कह लो
या तुम अपने को गौतम चक्रवर्ती कह लो

या तुम अपने को सेम्युअल बेकन कह-लो
कहो मैं ज्ञानी
मैं गुणियल
मैं सयाना
कहो तु गधा-तू-खच्चर-तू मूरख
इठलाओ कि जिस सूत के तांतो के आज़ादी दी
उसे मैंने बुना था
इतराओ कि हरियाली क्रांति को सींचने वाले मशक
की खाल मैंने उतारी थी
मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि
तुम माँ-जने भाई हो
सब एक ही पेड़ की जड़े हो
एक चने की दो दाल जैसे
कल तक मैं सब को आटा खिलाती थी
और आज तुमने बंदरबाट का खेल बनाया
आरक्षण की जूठन के लिए
तुम भाई-भाई भौंकने लगे
एक-दूसरे को काट खाने लगे।"

उक्त पंक्तियों में सामाजिक भाोषण से मुक्त होने की अभिलाषा जताई गई है। मुक्ति की इस अभिलाषा के लिए कवि ने दलित चेतना की अलख जगाने वाले कबीर, रैदास आदि संतों की विरासत और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के संघर्ष को याद किया है। इनके विचार और संघर्ष से प्रेरणा लेकर भाईचारा स्थापित करने का विचार–तत्व कविता में व्यंजित हुआ है। आगे की पंक्तियाँ है–

"तुम भूल गए कबीर दादा को
तुम भूल गए रैदास दादा को
तुम भूल गए माया दादा को
और इतनी जल्दी भूल गए 'बाबा' की बात?
तुम सयाने हो
तो अपने अनपढ़ भाई का ख्याल रखो
तुम बड़े हो
तो थोड़ा बड़प्पन दिखाओ
तुम तगड़े हो
तो दुबले को थोड़ा-ज्यादा दो
सब हिलमिल के रहो
सब मिलजुल के रहो
भेड़िये तो ताक में हैं
तुम्हें दोबारा जंगल में खदेड़ देंगे
तुम दर-दर भटकोगे और तबाह हो जाओगे
तुम्हें वे फिर से नीची मुंडी चलाएंगे
अपने बाबा की वसीयत तुम फिर से पढ़ो
और आज के बाद कभी मत पूछो
कि मैं बड़ा कि मेरा भाई
तू मुआ ढेड और वो नासपीटा चमार! "

स्पष्ट है कि कविता के अंत में समता, भाईचारा और सामाजिक उन्नति के स्वर मुखर हुए है। किसी भी समाज को उन्नति करनी है तो उसे भेदभाव की मानसिकता से मुक्त होना पड़ेगा। आपसी कलह से निजात पाने पर ही दलित वर्ग की समस्याएँ खत्म हो सकती है।

4.5.5 जातीय चेतना से मुक्ति की चाहत

भारतीय समाज में आधुनिकता के आगमन के बाद जाति आधारित समाज–संरचना में बदलाव होने लगा। यह महसूस किया जाने लगा कि आधुनिकता की मूल्य–चेतना जाति–निरपेक्ष व्यवहार का केन्द्र बनेंगी। अपितु आधुनिकता को सिद्धांत के धरातल पर ही स्वीकृत किया गया और भारतीय समाज जातिगत पूर्वग्रहों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका। गुजराती दलित कवियों ने इसकी असलियत को पहचानना शुरू किया था। दलित कवियों ने आजादी के बाद भी आधुनिक समाज में जाति के संस्कार कितने गहरे पैठे हुए हैं, इसे कविता के द्वारा मुखर किया है। गुजराती दलित कवि नीरव पटेल ने 'माँ! मैं भला कि मेरा भाई' कविता में जाति–बोध से ग्रस्त लेकिन आधुनिकता की चादर ओढ़े समाज की असलियत बयान की है। इसके अलावा दलित समाज के भीतर जो आंतरिक जातिवाद की समस्या है, उसे भी उजागर किया है।

सामाजिक परिवर्तन और उन्नति की अपेक्षा से संघर्ष कर रहा कोई भी समाज बाहरी हमलों को सह सकता है, लेकिन अगर भीतर ही भीतर भेदभाव की दीमक लग जाए तो उस समाज की उन्नति नहीं हो सकती। नीरव पटेल की कविता 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' दलित समाज और उनके मुक्तिकामी आंदोलन के भीतर हुए विभाजन को उजागर करती है। सामाजिक विषमता और भेदभाव की मानसिकता से मुक्त होने की प्रेरणा प्रदान करती है। 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता का सृजन दो भागों में हुआ है। इसमें आरंभिक दलित जीवन का वर्तमान, सामाजिक अंतर्विरोध, और दलित जातियों में उत्पन्न हुई ऊंच–नीच की भावना को दर्शाता है। दूसरे भाग में एक आदर्श प्रस्तुत है कि दलितों की विभिन्न जातियों में भाईचारा स्थापित हो। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कविता में यथार्थ और आदर्श के तत्व मौजूद है।

भारत में हिन्दू धर्म और वर्ण व्यवस्था के दबाव में तमाम दलित जातियाँ सदियों से शोषित होती रही है। जाति के आधार पर उनका उत्पीडन होता रहा है। इन दलित जातियों में चेतना जगाने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने किया। उन्होंने ने दलितों को संघर्ष की रह दिखाई। शोषण से मुक्ति के लिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष का मूलमंत्र दिया। लेकिन दलितों की उन्नति में जाति व्यवस्था बाधा बनती रही हैं। जातीय अस्मिता का बोध दलित समाज की बंधुत्व की भावना में को धीरे–धीरे खत्म करता है। इसलिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर 'जाति–भेद का उच्छेद' इस पुस्तक में जाति व्यवस्था का विरोध किया है। उन्होंने कहा है कि, 'जाति व्यवस्था सामुदायिक भावना की सबसे विरोधी सत्ता है।' उनके इन्हीं विचारों को नीरव पटेल ने अपनी कविता 'माँ! मैं भला की मेरा भाई?' में 'माँ' के द्वारा प्रस्तुत किया है। कविता में 'माँ' का जो चरित्र उभारा है, वह समानता का परिचायक है। इस माँ के सामने प्रस्तुत जो शिकायत है वह जातीय चेतना की शिकायत है–

"माँ! ये मेहरिए बहुत फूल गए हैं
माँ! ये सुतरिए बहुत अघा गए हैं
माँ! ये वाल्मीकि वे बहुत बहक गए हैं"

इस जातीय चेतना के कारण ही अलग–अलग दलित जातियाँ अपने–अपने स्वार्थ में लिप्त हुई है। वह जातीय गर्व का राग अलाप रही है। दलित जातियों में उत्पन्न हुई जातीय अहं की भावना के कारण उनकी सामाजिकता और भाईचारा खत्म होने लगा है। इससे दलितों का ही नुकसान अधिक होता गया है। इसलिए जातीय अहं से मुक्त होना पड़ेगा। दलित समाज को अपने जातीय गर्व से ऊपर उठ कर मानवीय मूल्यों को पुरस्कृत करना चाहिए। इस तरह का विचार कविता के दूसरे भाग में प्रस्तुत हुआ है।

कविता के दूसरे भाग में कवि दलित जातियों के आपसी कलहों के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज करते हैं। जातीय गर्व और ऊंच–नीच की भावना को खत्म करने की चाहत रखते हैं। दलित जातियों में पनपा स्वार्थ और अवसरवाद की मुखालफत करते हैं। 'माँ' के द्वारा सामाजिक सरोकारों का निर्वहन करने की अपेक्षा जताते हैं। कविता में जिस 'माँ' की कल्पना की है, वह दलित आंदोलन से जुड़ी और कबीर, रैदास और डॉ. आंबेडकर आदि के आंदोलन और विचारों को जानने–समझने वाली 'माँ' है। 'माँ' समूची दलित जातियों में भाईचारा और समान अवसर चाहती है। जिस तरह किसी भी परिवार में माता के लिए सभी सदस्य समान होते हैं। वह सभी बच्चों का ख्याल रखती है। परिवार के सभी सदस्यों के सुख–दुःख को समझती है। ठीक उसी तरह दलित जातियों को एकसूत्र में बांधने और दलित मुक्ति आंदोलन को दिशा देने के लिए कवि ने माँ को एक सामाजिक समानता के प्रतीक के रूप में सृजित किया है। वह जातियों के कहल को खत्म करने के लिए लोगों को उनके अतीत से रूबरू कराती है। अतीत में सभी दलित जातियों की पहचान बहिष्कृत समुदाय के रूप में होती थी। दलितों की पहचान उनके गले में लटकती हांडी और कमर में बंधे झाड़ू से होती थी। सामाजिक जीवन में दलितों का अपना कोई वजूद नहीं था। उनकी अपनी कोई अस्मिता नहीं थी और न ही अस्तित्व। इस अस्मिता और अस्तित्व का स्मरण 'माँ' के द्वारा किया गया है। इस संदर्भ में कविता की पंक्तियाँ है–

"भले ही तुम अपने को नीरव पटेल कह लो
या तुम अपने को गौतम चक्रवर्ती कह लो
या तुम अपने को सेम्युअल बेकन कह-लो
कहो मैं ज्ञानी
मैं गुणियल
मैं सयाना
कहो तु गधा-तू-खच्चर-तू मूरख
इठलाओ कि जिस सूत के तांतो के आज़ादी दी
उसे मैंने बुना था"

दलित समाज ने डॉ. आंबेडकर के विचार 'शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो' से प्रेरणा लेकर विकास का मार्ग अपनाया। लेकिन धीरे–धीरे सुविधा प्राप्त दलितों ने अपने आप को अपनी जाति तक सीमित कर लिया। प्रत्येक जाति का सदस्य अपनी जाति के हितों की बात करने लगा। इससे दलित मुक्ति आंदोलन बिखरता गया और जातीय वैमनस्य की भावना प्रबल होती रही है। इसलिए जाति के भीतर जो जातिवाद है उसे मिटाना चाहिए। जातीय अलगाव को खत्म करना चाहिए। उल्लेखनीय है कि अभी तक भारत में तमाम जाति विरोधी आंदोलन हुए है। बावजूद इसके जातिवाद की भावना को मिटाना तो दूर इसमें मूलगामी बदलाव भी नहीं हो सका है। भारतीय समाज में 'जाति व्यवस्था' एक अभिशाप की तरह जीवित है। इस अभिशाप से मुक्त होने की चेतना 'माँ! मैं भला की मेरा भाई' कविता में मुखर हुई है।

4.6 'पड़' कविता का पाठावलोकन

सामाजिक जीवन में बिम्ब और प्रतीकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मनुष्य के मन और मस्तिष्क में अतीत कालीन जीवन और परंपरा से जुड़े बिम्ब और प्रतीक विभिन्न रूपों में स्थित होते हैं। सामाजिक संरचना में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति भी प्रतीकों का आधार लेकर हुई है। यह प्रतीक वैदिक धर्म ग्रंथ, मनुस्मृति, पुराण और उपनिषदों के विभिन्न सूक्तों और श्लोकों से आधार रूप में स्वीकृत किए जाते रहे हैं। मनुस्मृति के विभिन्न प्रतीकों से ही जातियों के सामाजिक व्यवहार तय किए गए है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के समर्थकों ने धार्मिक और सामाजिक प्रतीकों के द्वारा वर्ण व्यवस्था और जाति संरचना को निर्मित किया। प्रतीकों के द्वारा मनुष्य के विभिन्न सामाजिक स्तर बनाए। पुरोहितों और ब्राह्मणवादी पण्डितों ने प्रतीकों को बड़ी कुशलता से मनुष्य जीवन से जोड़ा और समूचे समाज को सोपनिकृत ढाँचे में व्यवस्थित कर दिया। दलित साहित्य ने इन ब्राह्मणवादी प्रतीकों को खारिज किया है। समाज में स्थापित ब्राह्मणवादी प्रतीकों के प्रतिपक्ष में दलित रचनाकारों ने अपने प्रतीकों को स्थापित किया है। जयंत परमार की 'पड़' कविता इसका प्रमाण है। इस कविता में बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से दलित समाज का यथार्थ, वेदना, आत्मग्लानी और विद्रोह को अभिव्यक्त किया है। यह कविता निम्नानुसार है–

पड़

आसमान पर गिद्धों का
झुँड मंडराया था
पंख और चोंच की आवाज़ों ने
खिड़की-खिड़की दस्तक दी -
"बेल मरा है - बैल मरा है"
हवा सी फैल गई
खबर
गली-गली के कोनों में
सारी बस्ती के चेहरे पर रौनक थी
निकल पड़े थे सब अपने घरों से
मैं हाथों में पत्थर लेकर गिद्धों पर
फेंका करता था
उनको दूर भगाता था
गिद्ध भी हम पर गुस्सा करते थे

मुझे बराबर याद है
अब तक जिन गिद्धों
को मैंने
पत्थर मारे थे
जिन्हें रखा था
भूखा
आज वे मेरी मौत की
खुशखबरी सुन कर
मेरी लाश पर
टूट पड़े हैं
और मेरे अंदर के
बैल की

बोटी-बोटी नोच कर
मुझसे
बदल
ले रहे हैं!

4.7 'पड़' कविता का विश्लेषण

भारतीय समाज में जजमानी प्रथा रही हैं। इस प्रथा में दलित वर्ग के लिए अत्यंत निम्न दर्जे के कार्य करने पड़ते थे। गाँव में सवर्ण समाज के किसी जमींदार के यहाँ पर दलितों को हलवाह के रूप में कम करना पडता था। इसी प्रथा के तहत 'पड़' यह एक सामाजिक रूढ़ी बन गई है। 'पड़' का मतलब अगर गाँव में किसी सवर्ण जमींदार के यहाँ पर बैल अथवा गाय मर जाती है, तब उसकी खाल निकालने के बाद उस जानवर के मांस को पूरी दलित बस्ती में बाँटकर खाया जाता था। गरीबी की अवस्था में दलित अपनी आजीविका चलाने में मजबूर होते थे। मजबूरी की इन स्थितियों में दलितों को भूख से मुक्ति पाने के लिए मृत जानवरों का मांस खाना पडता था। समूचा दलित समाज जिस अवस्था में जीता रहा है, उस अवस्था में वे अगर किसी जमींदार का बैल मर जाता था तो उस बैल का मांस पाने के लिए जद्दोजहद करते थे। जैसे ही उन्हें किसी जानवर के मरने की खबर मिलती, उन्हें खुशी मिलती कि बहुत दिनों बाद आज घर–घर में चूल्हा जलेगा। इसे ही 'पड़' कहा जाता रहा है। 'पड़' की इस अवस्था को जयंत परमार ने बड़ी संवेदनशीलता से दर्शाया ही नहीं, अपितु इस प्रथा की वजह से दलित के मन में उत्पन्न आत्मग्लानी और अवमानना के संदर्भों को भी यथार्थ के धरातल पर मुखर किया है।

4.7.1 'पड़' नामक जजमानी प्रथा का चित्रण

जयंत परमार दलित जीवन की व्यथाओं को उजागर करने के लिए 'पड़' इस जजमानी प्रथा से 'बैल' और 'गिद्ध' के प्रतीकों को कविता में सृजित करते हैं। कविता में 'पड़' सामाजिक बुराइयों से युक्त वर्ण व्यवस्था का प्रतीक है। 'बैल' जमींदार या अभिजन वर्ग का और 'गिद्ध' दलित समाज का। कविता का आरंभ बैल के मरने की खबर से होता है। दलितों को इस खबर का संकेत आसमान में मंडराने वाले गिद्धों के व्यवहार से मिलता है। कविता की आरंभिक पंक्तियाँ है–

" आसमान पर गिद्धों का
झुँड मंडराया था
पंख और चोंच की आवाज़ों ने
खिड़की-खिड़की दस्तक दी -
'बैल मरा है - बैल मरा है'
हवा सी फैल गई खबर
गली-गली के कोनों में
सारी बस्ती के चेहरे पर रौनक थी
निकल पड़े थे सब अपने घरों से
मैं हाथों में पत्थर लेकर गिद्धों पर
फेंका करता था
उनको दूर भगाता था
गिद्ध भी हम पर गुस्सा करते थे "

कविता में बैल के मरने के बाद दलित समाज में उत्पन्न हुई स्थितियों को दर्शाया है। आसमान में गिद्ध का मंडराना बैल मरने की खबर का सूचक है। बैल के मरने पर दलित बस्ती में एक रौनक सी पैदा होती है। कवि यहाँ यह बोध कराते हैं कि सदियों से दलित अभाव और अवसाद की अवस्था में जीवन व्यतीत करते रहे हैं। उन्हें अपनी दशा का अहसास कभी नहीं हो सका। रूढ़ियों और परंपराओं के बंधनों में जकड़े रहने के लिए अभ्यस्त हुए दलित जीवन में भूख और वेदना एक दूसरे के पर्याय बन गए। भूख से मुक्ति पाने के लिए उनका संघर्ष निरंतर चलता रहा है। बैल का मरना दलित को भूख से मुक्ति का अहसास कराता है, लेकिन इसके लिए भी उन्हें आसमान में मंडराने वाले गिद्धों से संघर्ष करना पडता है। गिद्ध के साथ संघर्ष करने की जद्दोजहद दलित की वेदना और पीड़ा का द्धोतक है। गिद्ध की उपस्थिति दलित जीवन के संकटों का प्रतीक भी है।

4.7.2 रूढ़ी और परंपराओं के प्रति विद्रोह

सामाजिक जीवन की यह एक बड़ी विडंबनापूर्ण स्थिति है कि जो समाज हमेशा से भूखे पेट रहने के लिए अभ्यस्त है, उस समाज के लिए बैल के मरने की खबर भूख से मुक्ति की उम्मीद बन कर आती है। लेकिन भूख से मुक्ति के लिए गिद्धों से संघर्ष करना अचंभित और विस्मित भी कर देता है। दलित जीवन की यह हकीकत और व्यथा है कि वे इस तरह के कठोर संघर्ष से गुजर रहे हैं। यही हकीकत जब चरम पर पहुँच जाति है तो कवि के मन में आत्मग्लानी और विद्रोह पनपने लगता है। वह सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ प्रतीकात्मक रूप में ही प्रतिरोध दर्ज करता है।

"मुझे बराबर याद है
अब तक जिन गिद्धों को
मैंने पत्थर मारे थे
जिन्हें रखा था भूखा
आज वे मेरी मौत की
खुशखबरी सुन कर
मेरी लाश पर
टूट पड़े हैं
और मेरे अंदर के बैल की
बोटी-बोटी नोच कर
मुझसे बदला ले रहे हैं!"

कवि ने अपने अस्तित्व का अहसास होने पर जीवन के बीते दिनों को याद करते हुए अभिव्यक्ति की है। कवि के मन में सामाजिक जीवन में प्रचलित रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्त होने की चाहत है। भारतीय समाज में जिन कठोर अनुभवों से दलित व्यक्ति का बचपन गुजरता है, उस बचपन के दुःखद और कठोर अनुभव उसे हर पल व्यथित करते हैं। इन अनुभवों के अहसास से दलित व्यक्ति का मन कुंठित होने लगता है। उसे लगता है कि इस समाज में उसके अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता पर परम्पराएँ और रूढ़ियों के बंधन लादे गए है। बंधनों में जकड़े और अस्तित्व की तलाश करते दलित जीवन की जिजीविषा को कवि ने बड़ी तकलीफ से दर्ज किया है। साथ–ही 'पड़' जैसी प्रथाओं से उत्पन्न आत्मग्लानी और मानसिक पीडाओं को भी दर्शाया है। उल्लेखनीय है कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने 'पड़' जैसी प्रथाओं को बंद करने का आह्वान किया था। उनका मानना था कि इस तरह की प्रथाएं दलित समाज की गरिमा और सम्मान को खत्म करती है। इन्हीं प्रथाओं को जारी रखने से मनुष्य के रूप में दलित की पहचान को नकारा जाता है। अगर दलितों को अपने अस्तित्व और सम्मान को प्राप्त करना है तो उन्हें खुद

अवमानना का अहसास कराने वाली रूढ़ियों से मुक्त होकर सामाजिक बुराइयों के खिलाफ संघर्ष करना होगा। डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर दलित समाज में रूढ़ियों को नकारा और सम्मान से जीने की चाहत रखी। लेकिन दलित समाज इन रूढ़ियों से मुक्त होने के बावजूद आज भी उन्हें सवर्ण समाज द्वारा किया जाने वाला भेदभाव और अवमानना के आघातों को झेलना पड़ता है। विकासोन्मुख भारतीय समाज में अभी भी उचित सामाजिक और मानसिक परिवर्तन हुआ नहीं है। दलित की अवमानना खत्म नहीं हो सकी है। रूढ़ियों एवं परंपराओं से जुड़े पुरानपंथी और ब्राह्मणवादी लोग दलितों को सम्मानपूर्वक जीने का अवसर नहीं दे पाते हैं। वे आज भी अपने जातीय अहंकार के कारण दलितों पर अन्याय–अत्याचार करते हैं। इसलिए कवि यह महसूस करता है कि आज भी गिद्ध बदले की भावना से मेरी बोटी–बोटी नोच कर मुझसे बदला ले रहे हैं।

4.7 'व्यथा' कविता का पाठावलोकन

दलपत चौहान की 'व्यथा' कविता में दलित जीवन की व्यथा और वेदना की अभिव्यक्ति है। तथाकथित सवर्ण समाज दलित समाज का सदियों से शोषण करता रहा है। इस शोषण से संतप्त होने पर दलित को लगता है कि यहाँ जिस संस्कृति को वह अपना मानता है असल में वह उसकी अपनी संस्कृति है ही नहीं। इसलिए कवि कविता के माध्यम से भारतीय समाज की सांस्कृतिक विरासत को आलोचना के कठघरे में खड़ा करते हैं। 'व्यथा' कविता इस प्रकार है–

व्यथा

मैं भी हैरान हूँ
इस परकीय संस्कृति में जन्म लेकर
त्रस्त हृदय मेरे
तू और तुम भी चलो प्रिये
चलो
द्वार-द्वार पर बैठाए मंदिरों को
फेंक दें खाई में ...
और ... अपने नग्न बच्चों को
वर्णसंकर आचार्य जिन्हें मानते हैं शापित
बहा दे ... गंदे नाले में
उन्हें भी अच्छा नहीं लगेगा हमारी तरह जीना
उस पार गाँव की अपनी झोपड़ी में
सवर्णों को आग लगाने दो
वे भी जरूर जलेंगे उसमें
इस अग्नि ज्वाला को
फैला दो क्षितिज के उस पार
भले ही हम सब राख हो जाएँ
शूद्र होने से अच्छा है
चलो प्रिये
मैं भी परेशान हूँ इस परकीय संस्कृति को
ओढ़ कर!

4.9 'व्यथा' कविता का विश्लेषण

दलपत चौहान ने 'व्यथा' कविता में दलित चेतना के उन पहलुओं को दर्शाया हैं जिसका मूल तत्व नकार और विद्रोह है। समाज में मिलने वाली प्रताडना और मानसिक आघातों से दलित असहाय होता है। उसे सामाजिक जीवन में अपना अस्तित्व नष्ट होने का बोध होता है। दलित को जीवन के त्रासद अनुभवों से गुजरने पर यह महसूस होता है कि यहाँ की सभ्यता और संस्कृति में उसकी अस्मिता का कोई मोल नहीं है। अस्वस्थ जीवन की व्यथाओं से संतप्त होने पर कवि को लगता है कि भारतीय संस्कृति जिसे वह अपना मानता है वह उसकी की कैसे हो सकती है। मानसिक, सामाजिक आघात और उद्वेलन की अवस्था में दलित व्यक्ति को समाज और संस्कृति के प्रति अपनत्व और भावात्मक लगाव नहीं रह पाता है। इसलिए कवि खुद अपने जीवन के अनुभवों से सांस्कृतिक जीवन पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। वे समूचे दलित समाज के लिए एक अलग संस्कृति की स्थापना करने की अभिलाषा जताते हैं।

4.9.1 धार्मिक एवं आस्थावादी मानस के खिलाफ प्रतिक्रिया

सामाजिक जीवन में प्रताड़ित होने की घटनाओं को देखते हुए कवि को लगता है कि इतनी यातनाएं आखिर कब तक बर्दास्त की जाए। जिस भारतीय समाज में सभी समुदायों को समान माना गया है। उसी समाज में दलित को अपना अलग अस्तित्व दिखाई देने लगता है। उन्हें लगता है कि जिस संस्कृति कि दुहाई दी जा रही है, उसी संस्कृति के आड़ में दलित उत्पीडन हो रहा है। ऐसे में दलित संतप्त होकर विद्रोह की भूमिका में आता है। दलपत चौहान संतप्त होने की अवस्था में ही संस्कृति को नकारते हैं। उनका यह नकार कविता की आरंभिक पंक्तियों में मुखर है–

"मैं भी हैरान हूँ
इस परकीय संस्कृति में जन्म लेकर
त्रस्त हृदय मेरे
तू और तुम भी चलो प्रिये
चलो
द्वार-द्वार पर बैठाए मंदिरों को
फेंक दें खाई में ...
और ... अपने नग्न बच्चों को
वर्णसंकर आचार्य जिन्हें मानते हैं शापित
बहा दे ... गंदे नाले मैं"

इन पंक्तियों में मंदिरों को फेंक देने का जिक्र करके धार्मिक आस्थाओं में बंधे भारतीय मानस के खिलाफ प्रतिक्रिया व्यक्त की है। जड़वादी एवं कठोर धार्मिक परम्पराएँ और रूढ़ीवादी बंधनों से मुक्त होने की अभिलाषा जताई गई है। जिस समाज में धार्मिक पाबंदियों के परिणाम स्वरूप मनुष्य के साथ घृणास्पद व्यवहार होता हो, उस समाज की संस्कृति से मुक्त होने की चाहत भी है।

4.9.2 प्रगतिशील दृष्टिकोण और प्रतिरोध के स्वर

धार्मिक ग्रंथों में स्थापित विधि–विधान और धर्म के आचार्यों–पुरोहितों के वचनों को अंतिम सत्य मानकर दलित वर्ग को जो प्रताडना दी जाती है, उसका अहसास और आघात अत्यंत कठोर होते हैं। इससे उभरने की कोशिश जब–जब दलित करता है तो उसके

घर–परिवार और समूची बस्ती को जलाया जाता है। दबंग सवर्णवादियों के अन्याय–अत्याचारों का मुकाबला दलित कर नहीं सकते। इसलिए वे अपने आप को असहाय मानकर जैसे–तैसे अपनी जान बचाकर गाँव को छोड़ देते हैं। इस अवस्था में दलित को लगता है–

"उन्हें भी अच्छा नहीं लगेगा हमारी तरह जीना
उस पार गाँव की अपनी झोपड़ी में
सवर्णों को आग लगाने दो
वे भी जरूर जलेंगे उसमें
इस अग्नि ज्वाला को
फैला दो क्षितिज के उस पार"

यहाँ एक ओर घर से बेघर होने का दर्द प्रस्तुत है, वहीं दूसरी ओर शोषण से मुक्त होने की जद्दोजहद। ऐसे में दलित मात्र इतना की कह सकता है कि सवर्णों द्वारा किए कृत्यों से या बस्ती में आग लगाने से एक दिन वे भी खुद जल जाएंगे। यह व्यथित मन का आक्रोश या प्रतिक्रिया मात्र नहीं है, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक बंधनों से मुक्ति पाने की चेतना का एक पहलू है। प्रगतिशील–परिवर्तनकामी दृष्टिकोण से अन्याय–अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज करके क्रांति के लिए किया गया आह्वान भी है। इस आह्वान को समझने के लिए कविता में प्रस्तुत 'इस अग्नि ज्वाला को/फैला दो क्षितिज के उस पार' यह पंक्तियाँ महत्वपूर्ण है। इसके अलावा प्रतिरोध के स्वर को कविता की निम्न पंक्तियों में भी व्यंजित किया गया है–

"भले ही हम सब राख हो जाएँ
शूद्र होने से अच्छा है
चलो प्रिये
मैं भी परेशान हूँ इस परकीय संस्कृति को
ओढ़ कर!"

इस प्रकार 'व्यथा' कविता में गुलामी से मुक्ति की छटपटाहट और परिवर्तनकामी चेतना के स्वर मुखर हुये हैं। कविता में दलित व्यक्ति के संघर्ष की यथार्थ अभिव्यक्ति है। साथ–ही संस्कृति को नकारने और प्रतिरोध दर्ज करने की कवि की संवेदनाएं सहज और सपाटबयानी में प्रस्तुत हुई है। 'मैं' शैली में लिखित यह कविता दलित जीवन के अतीत और वर्तमान की ओर भी संकेत करती है।

4.10 सारांश

मराठी दलित साहित्य के बाद गुजराती में दलित साहित्य का अत्यंत तेजी से विकास हुआ है। गुजराती में दलित साहित्य की उपस्थिति और उसके प्रभाव से साहित्य के प्रयोजन, उद्देश्य और साहित्य आलोचना के प्रतिमानों में बदलाव हुए। गुजराती में पहले–पहल दलित साहित्य के अंतर्गत कविताएँ लिखी गईं। यह कविताएँ विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। गुजराती के दलित रचनाकारों ने अथक प्रयासों से दलित कविता पर केंद्रित कई विशेषांक निकाले। इन विशेषांकों पर लगातार वैचारिक बहसें हुई और दलित साहित्य के महत्त्व एवं योगदान को स्वीकृत किया जाने लगा। गुजराती दलित कविता की यह विशेषता हैं कि प्रत्येक दलित कवि अपनी क्षमता के अनुसार मनुष्य के अस्तित्व, अस्मिता, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के पहलुओं को मुखर करता है। गुजराती दलित कविता को समृद्ध करने वाले रचनाकारों में नीरव पटेल, जयंत

परमार और दलपत चौहान का विशेष योगदान रहा है। इनकी कविताओं में दलित जीवन के कठोर अनुभव, वेदना, पीड़ा, संघर्ष और जीवन परिवर्तन के स्वर मुखर हुए है। इस इकाई में इन कवियों की कविताओं का आप ने अध्ययन किया है। आप यह समझ गए होंगे कि तीनों कवियों की कविताओं की संवेदना अलग–अलग है, लेकिन कवियों द्वारा जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण और वैचारिकी लगभग समान है। इनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रगतिशील एवं परिवर्तनकामी चेतना की परिचायक है। प्रत्येक कवि ने कविता के द्वारा दलित जीवन के संघर्ष–यथार्थ को उजागर किया है और शोषण से मुक्ति की चाहत जताई है। इनके लिए कविता आस्वाद एवं मनोरंजन साधन मात्र नहीं है, बल्कि वे कविता के द्वारा मानवीयता और बंधुत्व के मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं। गुजराती दलित कवि सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण, धार्मिक आडम्बर, सांस्कृतिक उत्पीड़न और जड़ परंपराओं के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज करके बदलाव के लिए नया विचार रखते हैं। शोषण मुक्त समाज का स्वप्न देखते हैं और इस स्वप्न को यथार्थ में तब्दील करने के लिए नई चेतना विकसित करते हैं।

खंड के प्रश्न

1. मराठी दलित कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता पर प्रकाश डालिए।
2. दया पवार की 'वृक्ष' कविता वर्णव्यवस्था को प्रश्नांकित करती है। कथन का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।
3. ज्योति लांजेवार 'माँ' कविता के द्वारा दलित स्त्री के संघर्षमय और श्रमसाध्य जीवन की त्रासदी को उजागर करती है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. 'माँ' कविता में अभिव्यक्त दलित स्त्री के सामाजिक सरोकार और आंदोलनधर्मी चेतना का मूल्यांकन कीजिए।
5. मराठी दलित कविता का सौंदर्यबोध और जीवनवादी दृष्टिकोण को 'वृक्ष' और 'माँ' कविता के द्वारा स्पष्ट कीजिए।
6. तेलुगु दलित कविता की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए दलित चेतना के बिंदुओं को रेखांकित कीजिए।
7. 'गौरेया' कविता में प्रस्तुत दलित स्त्री की वेदना और जीवन यथार्थ को विश्लेषित कीजिए।
8. 'गौरेया' कविता का अर्थ बताते हुए कविता में प्रस्तुत विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
9. 'खून का सवाल' कविता का अर्थ बताते हुए कविता में अभिव्यक्त दलित जीवन की त्रासदी के पहलुओं पर प्रकाश डालिए।
10. कवि एन्ड्लूरी सुधाकर ने 'खून का सवाल' कविता में सामाजिक यथार्थ के कौन से प्रमुख बिन्दुओं को उजागर किया है। सोदाहरण स्पष्ट करें।
11. 'घोड़ा' कविता की रूपक योजना का विवेचन कीजिए।
12. घोड़े के रूपक द्वारा कवि दलित समुदाय की किस त्रासदी को रेखांकित करते हैं।
13. 'आज का एकलव्य' कविता के मिथकीय प्रयोग की आज के संदर्भ में प्रासंगिकता का मूल्यांकन कीजिए।
14. 'आज का एकलव्य' कविता के भाषा और शिल्प पर प्रकाश डालिए।

15. गुजराती दलित कविता की पृष्ठभूमि का विवेचन कीजिए।
16. 'माँ' मैं भला कि मेरा भाई' कविता में अभिव्यक्त दलित जातियों के अंतर्विरोधों का मूल्यांकन कीजिए।
17. 'माँ, मैं भला कि मेरा भाई' कविता में जातीय चेतना से मुक्ति की अभिलाषा किस तरह प्रस्तुत हुई हैं। उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।
18. 'पड़' कविता के द्वारा कवि ने पड़ नामक जजमानी प्रथा के यथार्थ को उजागर किया है। उदाहरण सहित मूल्यांकन करें।
19. जयंत परमार 'पड़' कविता में रूढ़ी और परंपराओं से विद्रोह करते हैं। दलित चेतना के संदर्भ में विश्लेशण कीजिए।
20. 'व्यथा' कविता में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आस्थाओं के खिलाफ प्रतिक्रिया है। उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।
21. गुजराती दलित कविताओं में अभिव्यक्त परिवर्तनकामी चेतना के पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, डॉ. चमन लाल, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा।

जातिभेद का उच्छेद, डॉ. बी.आर.आम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज, चौथीराम यादव, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, ओम प्रकाश वाल्मीकि, राधाकृ-ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद।

मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, डॉ. विमल थोरात, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली।

भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, संपादक–पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद और राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित साहित्य आंदोलन, डॉ. चंद्रकुमार वरठे, रचना प्रकाशन, जयपुर।

दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली।

चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, सं. डॉ श्यौराजसिंह बेचैन और डॉ. देवेन्द्र चौबे, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग।

युद्धरत आम आदमी (पत्रिका का दलित चेतना – गुजराती दलित साहित्य विशेषांक), संपादक – रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली।

दलित अस्मिता, संपादक – विमल थोरात, भारतीय दलित अंध्ययन संस्थान, नई दिल्ली।